11

मिलने का पता-
मैनेजर भास्कर प्रेस, मेरठ

एक कापी मूल्य ।=)] [वार्षिक मूल्य ३।-)

Printed & Published by
Raghubirsharan Dublis
At the Bhaskar Press
Meerut.

॥ ओ३म् ॥

वास्तविक

वैदिकवर्णव्यवस्था

(उत्तरार्ध)

अर्थात्

पं० अखिलानन्द द्वारा प्रवर्तित कल्पित

" वैदिकवर्णव्यवस्था "

की

सुसमीक्षा

——oooooooo——

लेखक--श्री पण्डित भूमित्र शर्मा

आर्योपदेशक मेरठ

प्रकाशक—

रघुवीरशरण दुबलिस सम्पादक 'भास्कर'

मेरठ

मिलने का पता-

मैनेजर भास्कर प्रेस, मेरठ

एक कापी मूल्य ।=)] [वार्षिक मूल्य ३।-)

Printed & Published by

Raghubirsharan Dublis

At the Bhaskar Press

Meerut.

भूलसंशोधन ।

वैदिकसिद्धान्तग्रन्थमाला संख्या ३ (अर्थात् वास्तविक वैदिकवर्णव्यवस्था पूर्वार्ध) के पृष्ठ ११ पङ्क्ति २२ में 'अपृणा' शब्द के स्थान पर 'अष्टणा' छप गया है सो पाठकगण शुद्ध कर पढ़ें, तथा पृ० १२ की २ दूसरी पंक्ति से आगे का पाठ छुट गया है—सो इस प्रकार है :-

" अर्थात् मेघ तक पहुंचता है । वह अग्नि कैसा है (परायन्) दूर जाता हुवा पुनः (विश्वस्य केतुः) सबका प्रकाशक (भुवनस्य गर्भः) लोकों का कारण (जायमानः) प्रकट होते ही (आरोदसी) पृथ्वी से लेकर आकाश तक (अपृणात्) फैल जाता है " ॥

———०———

अथ भूमिकासमीक्षा।

१–का भूमिः इति भूमिका–अर्थात पण्डित अखिलानन्द कृत भूमिका नहीं किन्तु (कुत्सिता भूमीति) कुत्सित अनृत व्याघात दोषों से भरी हुई है अतः सज्जन लोग विचारें॥

२–आपकी स्तनंधयी बुद्धि गम्भीर वेदतत्त्व का अवगाहन इस प्रकार से न कर सकी, जैसे कोई अज्ञ बांस की यष्टिका को लेकर तीन मील गहरे समुद्र के तलको नहीं जान सका।

३–इसी वास्ते आप २२ पृष्ठ तक गहरी गवेषणा न कर सके और नाहीं शूद्र को किसी प्रमाण से विद्याधिकार से पतित कर सके॥

अब हम सज्जनों को आप की कुत्सित भूमि की बानिगी दिखाते हैं॥

वैदिकवर्णव्यवस्था पृष्ठ २२ पं० १८ में–

१ ब्रह्मणे ब्राह्मणम्॥ य० ३०। ५॥

२ ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत॥

ऋ० ७। १०३। ८॥

३ ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि॥ ऋ० २। ४३। २॥

४ ब्राह्मणासो अतिरात्रे०० वदंतः ॥
ऋ० ७ । १०३ । ७ ॥

५ ब्रह्म आयुष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत् ॥
॥ १ ॥ पा० गृ० सू०

१-वेद के लिये ब्राह्मण का होना सिद्ध है । ब्राह्मण शब्द यहां पर जातिवाचक है । यदि वेद पढ़ने के बाद ब्राह्मण माना जाता तो (ब्रह्मणे) यहां पर चतुर्थी न होती, किन्तु पंचमी होती ॥

३-(ब्रह्मपुत्र) शब्द से परम्परागत ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है ॥

५-वेद ब्राह्मणों से ही आयुष्मान् है अन्य से नहीं । यह पारस्कर से सिद्ध है ॥

"दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः" ऐसा तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है ॥

उत्तर-ब्रह्मणे ब्राह्मणम् क्षत्राय राजन्यम्-

इस वाक्य का आप वेदविरुद्ध अनर्थ करते हैं कि बिना वेद पढ़े हुए को ब्राह्मण कहते हैं; हेतु यह देते हैं कि ब्राह्मण के लिये वेद है-यदि कोई मनुष्य कह देवे कि वकील के लिये वकालत है तो क्या आप इस का यही अर्थ करेंगे कि माता के उदर से ही क़ानून पढ़ा हुआ जो उत्पन्न हो वही एक वकील जाति है, उसी के लिये वकालत है अन्य के लिये नहीं, ऐसी अनर्गल बातें करके क्यों अपना उपहास कराते हो ? देखो, सूत्र अष्टाध्यायी व्याकरण ब्राह्मण क्षत्रिय आदि ये संज्ञा अर्थ वाली हैं, पट घट की नाईं रूढ़ि नहीं यथा-"तदधीते तद्वेद । अ० ४ पाद २ सूत्र ५९" ॥ ब्रह्म अधीते-ब्राह्मणः जो ब्रह्म अर्थात् वेद को पढ़े वा जाने सो ब्राह्मण है । तब (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) का क्या अभि-

प्राय है कि ब्रह्म अर्थात् वेदों का निरन्तर अभ्यास करने के लिये ही प्रभु ने ब्राह्मण पदवी को निर्माण किया है, जैसे क़ानून का अच्छी तरह अभ्यास करनेके लिये ही राजा ने वकील पदवी को निर्माण किया है-जो वकालत पास करेगा और पास करके प्रजा के अभियोगों में क़ानून से राजा को न्याय करते समय सहायता देता है वही वकील कहलाता है। इसी प्रकार (वेदमेव सदाऽभ्यस्येत्) अर्थात् वेदों का निरन्तर अभ्यास करना ही ब्राह्मणत्व का उत्पादक है। यदि ऐसा न मानोगे तो नीचे लिखे मन्त्रों से विरोध होगा ॥ यथा :——

१ इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुते करासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥

ऋ० १० । ७१ । ९ ॥

(इमे+ये) ये जो मनुष्य (न अर्वाङ्+न परः) न ऐहिक न पारलौकिक (चरन्ति) पर्यालोचन करते हैं, (न+ब्राह्मणासः) न वेदाध्ययन करते हैं और (न+सुते+करासः) नहीं सोम अग्निहोत्रादि यज्ञ करते हैं (ते, एते, अप्रजज्ञयः) वे अविद्वान् (वाचं+अभिपद्य) लौकिक भाषा को जान (पापया) पाप से युक्त वाणी का प्रयोग करते हुए (सिरीः) हलग्राही बन (तन्त्रं) अपने ही मिथ्या तन्त्र को (तन्वते) विस्तारित करते हैं ॥ (सायण)

उक्त मन्त्र में वेद से हीन को और यज्ञ न करने वाले को पापी कहा है। अब द्वितीय मन्त्र को देखिये-

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते यो वै

तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥

अथर्व का १० सूक्त ७ । मं० २४

हे मनुष्यो! (यत्र) जिस में (देवाः) ३३ देवता स्थित हैं (यः) जो (वै) निश्चय से (तान्) उन देवताओं को (प्रत्यक्षं) साक्षात्कार करके (विद्यात्) जाने और (ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते) सर्वोत्कृष्ट परमात्मा की उपासना करे (स) वही (ब्रह्मविदः) वेदवित् पुरुष (वेदिता) ज्ञानी तुम्हारे मध्य में (ब्रह्मा) ब्राह्मण हो॥

इस मन्त्र में वेदज्ञ को ही ब्राह्मण वा ब्रह्मा कहने की आज्ञा ईश्वर ने दी है फिर वेदाज्ञा के सन्मुख आप की वेदविरुद्धा प्रलापयुक्ता वाणी को कौन बुद्धिमान् मान सक्ता है॥

२ ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत॥

ऋ० ७ । १०३ । ८

वेदों का अध्ययन करने वाला सोमयाजी जैसे सत्य से युक्त भाषण करते हैं वैसे ही अन्यों को भी होना चाहिये॥

३ उद्गाता इव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि॥ ऋ० २ । ४३ । २॥

हे (शकुने) पक्षीगण (इव) जैसे (उद्गाता) ऋत्विक् लोग (साम) सामगान करते हैं वैसे ही तुम (गायसि) गाते हो तथा (ब्रह्मपुत्र) वेदवेत्ता का पुत्र (इव) जैसे (सवनेषु) यज्ञों में स्तोत्र पढ़ता है वैसे ही तुम (शंससि) अपने रचयिता की महिमा को प्रशंसित करते हो।

४ ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः। संवत्सरस्य तदहः परिष्ठयन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥ ऋ० ७ । १०३ । ७॥

इस मन्त्र में वर्षा ऋतु के मण्डूक का वर्णन है ।

हे मण्डूको ! (न) जैसे (अतिरात्रे+सोमे) अतिरात्र नामक सोमयज्ञ में रात्रि को ब्राह्मण लोग मन्त्रों का गान करते हैं वैसे ही इस समय प्रावृट् ऋतु की रात्रि में (पूर्ण+सरः) भरे हुए तालाब में (अभितः-वदन्तः) चारों तरफ़ से ध्वनि करते हुए (संवत्सरस्य+तत्+अहः) वर्ष के उन दिनों में (परिष्ठ) चारों तरफ़ फैल जाते हैं (यत) सो वह समय (प्रावृषीणं+बभूव) वर्षा ऋतु का सूचक होता है।

१ उक्त मन्त्रों में ब्राह्मण शब्द जातिवाचक तो कहीं भी नहीं किन्तु यौगिक संज्ञा है ॥

३ यदि (ब्रह्मपुत्र) अर्थात् वेदवेत्ता का पुत्र भी वेदवेत्ता होवे यह बात असंभव नहीं, किन्तु ऐसा तो होना ही चाहिये, परन्तु परंपरा का महाप्रलयपर्य्यन्त किसी एक ही कुल में संभव नहीं जैसे कि आप न कभी संध्या करते हैं न अग्निहोत्र करते हैं और न सूर्योदय से प्रथम उठते हैं-यह कई २ दिन तक हमने आप की दशा देखी है । इस के अतिरिक्त शतशः ब्राह्मण इस वक्त ईसाई मुसलमान मौजूद हैं और शतशः वाममार्गी मांस मद्यसेवी वेदविरोधी मौजूद हैं फिर परंपरा आप की कहां पर स्थिर है-बतलाइये ॥

५ ब्राह्मण आयु वाला होने से वेदों की आयु है ॥

इसका अभिप्राय यह है कि संसार में जैसे २ वेद-पाठी ब्राह्मण दीर्घजीवी हों तो वेदों का भी अधिक प्रचार होने से वेद भी जीवित रहते हैं । परन्तु इस वक्त तो जितनी इंजील और कुरान जीवित हैं उतना तो वेद नहीं रहा । जो कुछ है भी वह ऋषि दयानन्द की कृपा है, नहीं

तो पौराणिक, वाममार्गी आदि तो अब भी वेदों को मृतक के ही समान कर रहे हैं ॥

६ ब्राह्मण वेदज्ञ ही देव है जो वेद नहीं जानता वह तो कुटुम्ब सहित शूद्र है (योऽनधीत्य०० सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः) ॥

वै० व० व्य० पृ० २३ में:—

धृतव्रताः क्षत्रियाः क्षत्रमाशतुः । ऋ० ८, २५, ८
धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतः । ऋ० १०, ६६, ८
ततो राजन्यो अजायत । १, ५, ८१

इन मन्त्रों में दूसरा वर्ण क्षत्रिय आता है । (क्षत्राद् घः ४ । १ । १३८) इस सूत्र से (घ) प्रत्यय होने से जातिवाचक क्षत्रिय शब्द सिद्ध होता है । क्षत्रिय वैश्यादि प्रजावर्ग का राजा होता है, परन्तु (सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ९ । ४०) इस मन्त्र से ब्राह्मणों का राजा सोम अर्थात् ईश्वर होता है, क्षत्रिय नहीं । अतः ब्राह्मणों के ऊपर क्षत्रियों का कोई अधिकार नहीं है ।

उत्तर १-ऋतवाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।
धृतव्रताः क्षत्रियाः क्षत्रमाशतुः ॥ ऋ० ८ । २५ । ८

भावार्थ—(ऋतवाना) सत्यवान् (सुक्रतू) शोभनकर्म वाले वा प्रज्ञा वाले (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण—राजा और मन्त्री (साम्राज्याय) चक्रवर्ती राज्य के लिये (नि+सेदतुः) श्रेष्ठ सम्मति के लिये स्थित हुए (धृतव्रताः) उत्तम कर्मों को धारण करने वाले (क्षत्रियाः) राजा और मन्त्री (क्षत्रं) राज्यबल को (आशतुः) व्याप्त करें ।

२—धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा

अध्वराणामभिश्रियः । अग्निर्होतार ऋत
सापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६६ । मं० ८

भाषार्थ-(धृतव्रताः) उत्तम शौर्यादि कर्मों के धारक (क्षत्रियाः) क्षत्र अर्थात बलवान् होने से आदरणीय क्षत्रिय लोग (यज्ञनिष्कृतः) निरन्तर अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों के कर्ता (बृहद्दिवाः) महान् तेजस्वी (अध्वराणां) हिंसा रहित यज्ञों के सेवक (अग्निर्होतारः) अग्नि के समान विद्वानों को दान से संतुष्ट करने वाले (ऋतसापः) सत्य के भाजन इसी लिये (अद्रुहः) किसी से भी वध होने के योग्य नहीं । इस उक्त प्रभाव वाले क्षत्रिय लोग (वृत्रतूर्ये) संग्राम में (अपः) शूरवीरतादि युक्त कर्मों को (अनु+असृजन्) अधर्मियों के नाशार्थ विस्तृत करते हैं ।

उक्त दोनों मन्त्रों में क्षत्रिय वर्ण को जाति शब्द से कहीं भी नहीं कहा है, परन्तु आप आखें बन्द किये हुए वर्ण को जातिवाचक ही लिखते जारहे हैं । (क्षत्राद् घः ४ । १ । १३८) इस सूत्र से क्षत्र शब्द से अपत्यार्थ में (घ) प्रत्यय होता है यथा-क्षत्रस्यापत्यम्-क्षत्रियः ॥

ततो राजन्यो अजायत । १ । ५ । ८१

इस का ठीक पता नहीं दिया है, परन्तु अर्थ स्पष्ट है पश्चात् राजन्यः अर्थात क्षत्रिय उत्पन्न हुए । (राजश्वशुराद्यत ४ । १ । १३७) अपत्यार्थ में राज श्वसुर शब्दों से यत् प्रत्यय हो-राज्ञः अपत्यं राजन्यः ॥

इन उक्त प्रमाणों से भी आप के मत की कोई सिद्धि नहीं होती है । फिर जो आपने लिखा है कि (सोमोऽस्माकं

ब्राह्मणानां राजा) इस से भी आप के इष्ट की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि प्रथम तो आप का अर्थ ही अशुद्ध है । द्वितीय ठीक भी मान लेवें तो वेदविहीन ब्राह्मण नहीं हो सकते । जब ब्राह्मण ही नहीं तो अवश्य राजा के दण्डनीय होंगे । अब इस का सत्यार्थ देखिये :—

एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाᳬराजा

यजु० ९ । ४

भावार्थ—(अमीः) हे अमुक देश की प्रजाओ ! (एषः) यह (वः) आप लोगों का राजा और (अस्माकम्) हम (ब्राह्मणानाम्) ब्राह्मणों का (सोमो) सौम्य गुणयुक्त राजा है

यह मन्त्र राज्याभिषेक के समय जो राजा चुना जाता है, उस के गुण कर्मादि का वर्णन प्रजा के सम्मुख करने का विधायक है । इस का पूरा व्याख्यान और पूर्ण मन्त्र यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्दकृत भाष्य में देखिये । हम ने प्रयोजनमात्र उद्धृत किया है, परन्तु आप यदि वैदिक-काल में हुए होते तो ऐसा अनर्थ करने पर अवश्य दण्डनीय होते ।

वै० व० व्य० पृ० २३ :—

आगे आप ने तीन मन्त्रों के टुकड़े प्रकरणविरुद्ध (विश नाम प्रजा का है) इस विषय में दिये हैं । अतः उन को हम उद्धृत नहीं करते हैं, क्योंकि वर्णव्यवस्था से उन का कोई सम्बन्ध नहीं है ॥

(ऊरू तदस्य यद्वैश्यः य० अ० ३१) इस मन्त्र में वैश्य भी तृतीय जाति मानी जाती है ॥

उत्तर—उक्त मन्त्र में जाति शब्द कहीं भी नहीं किन्तु (अस्य) विराट्पुरुषस्य—इस विराट्पुरुष का (यत

जो (वैश्यः) वैश्य वर्ण है (तत) वह (ऊरू) जंघा है॥

वै० व० व्य० पृष्ठ २४ में:—

पद्भ्याᳬशूद्रो अजायत । य० अ० ३१, ११

इस मन्त्र में चतुर्थ शूद्र जाति मानी गई है। इसके अतिरिक्त बाकी सब वर्णसंकर हैं॥

२ (चत्वारो वर्णाः) यह निरुक्त में और (ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रः) ऐसा शतपथ में और (ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्राश्चत्वारो वर्णाः) वज्रसूचिकोपनिषद् में आया है। शूद्र को नीच कहते हैं॥

वृषो हि भगवान् धर्मः तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥
मनुस्मृतौ

शूद्र धर्म का नाश करने वाला है॥

१ उत्तर—आपकी चंचलबुद्धि की कहीं भी स्थिरता नहीं। जब कि वर्ण चार ही हैं शूद्र से परे कोई वर्ण ही नहीं तो फिर उन में वर्णसंकरता कैसे?॥

(पद्भ्याᳬशूद्रो अजायत) विराट्पुरुष का पादस्थानी शूद्र है। इस में शूद्र को जाति नहीं कहा॥

२ यदि निरुक्त, शतपथ और वज्रसूचिकोपनिषद् में चार वर्ण कहे हैं तो शूद्र को नीच तो नहीं कहा है। न जाने आप को शूद्रों से क्यों द्वेष है? यदि नीच हैं तो उनके हाथ की पूरी कचोरी क्यों खाते हो? आप की जन्मभूमि चन्दू नगरा के आसपास अहर लोगों का निवास है। इनके घरेजा वा कराउ होता है, महिषासुर की जोति जगवाते हैं और आप ने इनकी पूरी कचौरी खूब खाई होंगी, धन भी लिया होगा। परन्तु शूद्र को तो आपस्तम्ब ऋषि (शूद्राः

संस्कर्त्तारः स्युः) रसोई बनाने की आज्ञा देते हैं। अतः नीच उन्हीं को कह सक्ते हैं जो चोरी व्यभिचार हिंसा मद्यसेवी ज्वारी दुराचारी हैं। पापरहित कर्म कर व्यवसायी, सेवक आदि को नीच कहना उचित नहीं है। सेवक को सेवक कहदो तो कोई बुरा न मानेगा; परन्तु नीच कहो तो लट्ठ से उत्तर देगा॥

३ आपने वज्रसूचिकोपनिषद् की अच्छी याद दिलादी! अच्छा, अब देखिये वह तो आपके लेख पर चौका ही फेरे देता है। देखिये—आपने भयभीत होकर जो पाठ छोड़ दिया है उसी को उद्धृत करते हैं॥

श्रीमान् शंकराचार्य्य जी लिखते हैं कि चारों वर्णों में ब्राह्मण मुख्य है, यह वेदवचनों से सिद्ध है। पुनः इस विषय पर प्रश्नोत्तर की रीति से निर्णय करते हैं॥

तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम १ किं जीवः। २ किं देहः। ३ किं जातिः। ४ किं ज्ञानम्। ५ किं कर्म। ६ किं धार्मिक इति॥

१ तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न। अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात्। एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च तस्मान्न जीवो ब्राह्मणः॥

२ तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न। आचाण्डालपर्य्यन्तानां मनुष्याणां पांचभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्माधर्मादिसाम्यदर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः। क्षत्रियो रक्तवर्णः। वैश्यः पीतवर्णः। शूद्रः कृष्णवर्णः इति नियमाभावात् पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादोषसम्भवाच्च। तस्मान्न देहो ब्राह्मणः॥

३ तर्हि जातिर्ब्राह्मण इति चेत्तन्न । कुतः—ऋष्यशृङ्गो मृग्याः कौशिकः कुशात् । जाम्बूको जम्बूकात् । वाल्मीकिर्वल्मीकात् । व्यासः कैवर्त्तकन्यायाम् । शशपृष्ठात्गौतमः । वशिष्ठ उर्वश्याम् । अगस्त्यः कलशात । एतेषां ब्राह्मण जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयः बहवः सन्ति । तस्मान्नजातिर्ब्राह्मणः ॥

४ तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ॥

५ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचिताऽऽगामिकर्मसाधर्म्यदर्शनात् कर्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीयति तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ॥

६ तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयोऽपि हिरण्यदातारो बहवः सन्ति तस्मान्नधार्मिको ब्राह्मण इति ॥

भाषार्थ—अब विचार यह है कि किसका नाम ब्राह्मण है ॥

१ क्या जीव ब्राह्मण है । २ वा देह । ३ वा जाति । ४ वा ज्ञान । ५ वा कर्म । अथवा ६ धार्मिक ब्राह्मण है ॥

१ यदि जीव को ब्राह्मण मानें तो यह ठीक नहीं, क्योंकि भूत, भविष्य में होने वाले अनेक शरीरों में जीव का स्वरूप एकसा ही रहता है तथा एक ही जीव कर्मवश से अनेक देहों में जाता है, परन्तु सर्व शरीरों में जीव का स्वरूप एक ही रहता है इस हेतु से जीव ब्राह्मण नहीं ॥

२ यदि कहो कि देह ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि चांडाल पर्यन्त सब मनुष्यों का पांचभौतिक देह

होने से एकरूप है, वृद्ध, युवा, मरण, धर्माधर्म सब शरीरों में बराबर हैं। यदि कहो ब्राह्मण श्वेतवर्ण, क्षत्रिय रक्तवर्ण, वैश्य पीत और शूद्र कृष्णवर्ण हैं तो यह नियम भी ठीक नहीं, क्योंकि काश्मीर के सब श्वेत और अवधके सब रक्त और जापान के सब पीतवर्ण और मद्रास के सब कृष्ण-वर्ण हैं और देह को ब्राह्मण मानोगे तो पित्रादि के मरने पर देह का दाह करने से पुत्र को ब्रह्महत्यादि पाप होगा इस हेतु से देह ब्राह्मण नहीं ॥

३ यदि कहो कि जाति ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि विजातीय मनुष्यों में से अनेक ऋषि वेदज्ञ हुए। यथा मृगी नामक जांगलिक स्त्री से ऋष्यशृंग, कुशिक नाम शूद्र से कौशिक, जम्बुक से जाम्बूक, वल्मीक से वाल्मीक, कैवर्त्त की मल्लाहिनी से व्यास, शशक से गौतम, उर्वशी से वशिष्ठ, कलश से अगस्त्य उत्पन्न हुए ॥

मनुस्मृति में लिखा है कि (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी०) अर्थात् नक्षत्र, वृक्ष, नदी आदि पर नाम न रक्खे। इस से निश्चय है कि मृगी, कुश, जम्बुक, वल्मीक, कलश ये नाम वनवासी असभ्य जातियों के हैं। पंजाब में खोता नाम गधे का है वहां पुत्रियों को खोती और पुत्रों का खोता-लाल नाम अब भी रक्खे जाते हैं इत्यादि असभ्य लोगों में से वेदज्ञ ऋषि हुए, अतः जाति ब्राह्मण नहीं ॥

४ यदि कहो कि ज्ञान ब्राह्मण है तो सो भी ठीक नहीं क्योंकि क्षत्रिय आदि में भी अनेक विद्वान् परमार्थ-दर्शी हुए यथा अश्वपति काश्मीर के राजा से ६ ऋषियों ने ब्रह्मविद्या का उपदेश लिया और जनक से भी, इस से ज्ञान ब्राह्मण नहीं ॥

५ यदि कहो कर्म ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी ये तीनों कर्म समान ही हैं और कर्मों से ही प्रेरित हो सब जंतु कर्म करते हैं; इससे कर्म ब्राह्मण नहीं ॥

६ यदि कहो कि धार्मिक ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि क्षत्रियादि भी सुवर्ण दान करने वाले अनेक हैं, अतः पुण्यात्मा भी ब्राह्मण नहीं ॥

उत्तर–१तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम। यः कश्चिदात्मनमद्वितीयं सर्वदोषरहितंसत्यं ज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्त्तमानमंतर्बहिश्चाकाशवद्व्यापक अनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसम्पन्नो वर्त्तते । एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथाहि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव ॥

उपर्युक्त का भावार्थ–तब ब्राह्मण किस को कहते हैं जो सर्वदोषरहित, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, स्वयं निर्विकल्प, अशेष, कल्पाधार, सर्व प्राणिमात्र का अन्तर्यामी होकर वर्त्तमान आकाशवत बाह्याभ्यन्तरव्यापक, अखंडानन्द, अशेष, अनुभवैकवेद्य और साक्षात भासमान् जो परमात्मा है उसको करतल आमलकवत आत्मा में साक्षात करके जो कृतार्थ हो गया है और जो कामरागादिदोष रहित है और शमदमादिसम्पन्न, मात्सर्य्य, तृष्णा, आशा,

मोह, दम्भ, अहंकारादि से रहित जो है वही ब्राह्मण है यही श्रुति, स्मृति आदि का अभिप्राय है। अन्यथा ब्राह्मण की सिद्धि नहीं हो सकती है॥ कहिये पंडित जी! अब तो संतुष्ट हुए कि नहीं? क्यों भगवान् शंकराचार्य के तो आप अनन्य भक्त हैं अब उनके फैसले को भी स्वीकार करोगे या कि नहीं?॥

आगे आप ने जो मनुस्मृति का प्रमाण देकर यह साबित करने की चेष्टा की है कि जो धर्म का लोप करता है वह वृषल अर्थात् चाण्डाल है। शूद्र धर्म का नाश करता है। अतः आप का यह अभिप्राय हुआ कि शूद्र चाण्डाल है

(वृषोहि भगवान्धर्मः) इस का अर्थ–धर्मात्माओं के लिये सब ओर से सुख की वर्षा करता है। अतः धर्म को वृष कहते हैं उस वेदोक्त धर्म का जो लोप करे उस को विद्वान् लोग (वृषल) चाण्डाल जानें। इसमें ख़ास शूद्र के लिये कोई विधान नहीं, किन्तु जो धर्म का लोप करे वही चाण्डाल होगा।

जितने भी ब्राह्मणादि वेदविरुद्ध मतों के प्रचारक वा उपासक हैं उन सभी पर उक्त श्लोक घटता है, क्योंकि धर्म का नाश शूद्रों ने नहीं किया, बल्कि जन्माभिमानी द्विजों ही ने किया और कर रहे हैं॥

वै० व० व्य० पृ० २४। में–

शूद्रो यदर्यायै जारः। यजु० २१। ३१

भिन्न २ दो वर्णों के मेल से जो पैदा हो वह वर्णसङ्कर कहाता है। शूद्र का वैश्या के साथ जारकर्म होना वर्णसंकरों के प्रभव का निदर्शन है।

वै० व० व्य० पृ० २५। २६ में–

वेद में वर्णसंकरों के अनेक नाम हैं, परन्तु समष्टिरूप से उनका नाम अरण (रण शब्दे) है। जिन के लिये वेदाधिकार नहीं वे अरण कहलाते हैं।

तएते अन्ध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दा मूतिवा इत्येतदन्ता बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः

ऐतरेय० ७। १८

१-ये अन्ध्र आदि दस्यु विश्वामित्र की सन्तान हैं।

२-विश्वामित्र एक राजर्षि हुए।

३-अनेक पुराणों में इनको ब्राह्मण वीर्योत्पन्न लिखा है

४ मेनका आदि वेश्याएं इन के साथ रहती थीं। कई बार इन्द्र ने इनके द्वारा आप का तप नष्ट कराया।

५-आजकल जितने अनार्य अन्त्यज देखने में आते हैं वे सब आप के ही कुलतन्तु हैं।

६-कई लोग आजकल सत्यकाम, जावाल को भी वेश्या॰ पुत्र कहने लगे हैं, परन्तु वे ब्राह्मण पुत्र थे। देखिये छान्दोग्य में-

बह्वहं परिचरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि इति ॥

उत्तर-(शूद्रो यदर्याये जारः) इस में वर्णसंकर का अभिप्राय नहीं, न आप की इतनी समझ है कि जो इस का

अभिप्राय समझें । इस का अर्थ यह है कि (यत्) जो (शूद्रः) मूर्ख स्वामी है वह (अर्यायै) गृहस्वामिनी के लिये (जारः जरयिता) जीर्ण निर्बल करने वाला है। अर्थात् चतुरा गृहस्वामिनी के लिये मूर्ख स्वामी दुःखदायी होता है अर्यः स्वामिवैश्ययोः) इसमें कोई प्रमाण नहीं कि वर्णसंकरोंका समष्टिरूप नाम अरण है और जबकि (यथेमां वाचं०)इस वेदोक्त मन्त्रमें(अरणाय)अर्थात् अतिशूद्र के लिये भी ईश्वर वेदोपदेश देने की आज्ञा देते हैं तो आप के जुल्म से भरे हुए इश्तनामे की कौन स्वदेशभक्त क़दर कर सकता है ?

३—जब कि आप जन्म से वर्ण मानते हैं तो विश्वामित्र ने नीच वेश्यागमन करके दस्युओं को क्यों पैदा किया? क्या वेश्यागमन करने वाले का द्विजत्व नष्ट नहीं होता है ? और अन्ध्रादि दस्युओं का विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न होना जन्म से वर्ण का बाधक है। यदि वे ब्राह्मण वीर्य से उत्पन्न थे तो राजर्षि होने परभी उन की सन्तान का वर्ण क्यों बदल गया ?

४—जबकि इन्द्र ऐसा पापी था कि ऋषियों का वेश्याओं के द्वारा तप नष्ट कराता था तो वह देवताओं का माननीय इन्द्र पदवी पर नहीं रह सकता था। अतः यह सर्वथा गप्प है। यदि विश्वामित्र ऐसा कामी था तो न वह क्षत्रिय हो सकता है और न ब्राह्मण।

५—अन्ध्र, पुण्ड्रादि यदि विश्वामित्र की ही सन्तान हैं तो आप के ख़याल के बमूजिब उस को नरक होना चाहिये क्योंकि वह डाकुओं की संख्या बढ़ा गया, परन्तु जैसे अष्टादश पुराण, देव-ऋषिनिन्दक हैं उन्हीं के समान आप

का कथन है। विश्वामित्र जी तो पवित्रात्मा तपस्वी थे। वैसाही वैदिक इन्द्र भी पवित्रात्मा होता था॥

रही ऐतरेय की वार्ता उसका मतलब यह है कि अन्ध्र पुण्ड्रादि विश्वामित्र की संतान क्षत्रिय थे पीछे ब्राह्मणों से उपदेश व विद्या न मिलने से ऐतरेय काल में वे दस्यु हो गये थे जन्म से डाकू नहीं थे॥

६-कैसा अनर्थ करते हो सारे छान्दोग्य में कहीं भी जाबाल को ब्राह्मण नहीं लिखा है फिर ब्राह्मणपुत्र कैसे? तथा (बह्वहं परिचरंती परिचारिणी यौवने त्वामलभे) इसका अर्थ शंकराचार्य जी व आनन्दगिरि दोनों ही का मूल के विरुद्ध है क्योंकि मूल में भर्त्ता के गृह का कहीं भी पता नहीं। यदि कहो कि युक्ति से आता है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि जबाला यह कहती है कि "जवानी में बहुतों के साथ परिचरण करती हुई पुनः उन बहुतों की परिचर्या करते हुए जवानी में तुझको प्राप्त किया" अतः मैं यह नहीं जानती कि किसका गर्भ था जब यह नहीं जानती तो कैसे बताऊं कि तेरा अमुक गोत्र है। दूसरी दलील यह है कि यदि वह विवाहिता होती तो जाबाल को अपने पिता का नाम ज़रूर ज्ञात होता क्योंकि आजकल ७। ८ वर्ष के सभी लड़के अपने पिता के नाम को जानते हैं। तीसरी बात यह है कि जबाला को भी अपने पति का नाम मालूम होना चाहिये था, क्योंकि वह ज़रूर पति का नाम सुनती रही होगी, जब पति का नाम मालूम होता तो गोत्र भी अन्य ब्राह्मणों से ज्ञात हो जाता। अतः जबाला सत्यवादिनी थी। उस सत्य की महिमा ने ही जाबाल का उद्धार करा दिया, परन्तु आप और आनन्दगिर्यादि पक्षपाती हैं।

वै० व० व्य० पृष्ठ-२१। २८-जानश्रुति भी शूद्र नहीं था क्षत्रिय था॥

उत्तर—बेशक जानश्रुति क्षत्रिय था उसको अज्ञानता से ऋषि ने उसको शूद्र कह दिया था अतः यह निर्विवाद है॥

१ वै० व० व्य० पृ०-२९। ३०—(इतरस्त्वन्यनीचयोः-अमरकोषे) इस प्रमाण से इतरा को नीच मान कर ऐतरेय को दासीपुत्र कहा जाता है परन्तु ऐतरेय ऋषि ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न हुए यह इतिहास पुकार २ कर कह रहा है। ऐतरेय के पिता की दो स्त्रियां थीं दूसरी का नाम इतरा था अतः ऐतरेय को शूद्र मानना बड़ा पाप है॥

२-ऋषि कक्षीवान् को मैं पूर्व लिख आया हूं वे भी ब्राह्मणवीर्य से थे॥

३-कवष ऐलूष के विषय में—

ते कवषमैलूषं सोमादनयन् । दास्याः पुत्रः कितवो ब्राह्मणः सपिपासया वित्तः आपोनप्त्रीयमपश्यत् । १२ । १९ । ऐतरेय ।

कवष ऐलूष का पिता ब्राह्मण परन्तु माता दासी थी-वीर्य प्रधान होने से उन को ब्राह्मणपुत्र कहा जा सकता है

उत्तर-१ एतद्धस्म वै तद्विद्वान् आह महीदास ऐतरेयः। १। ८। २ ऐत० ब्रा० । इस की व्याख्या स्वामी शंकराचार्य जी ने इस प्रकार की है किः—

"महिदासो नामतः इतराया अपत्य मैतरेयः" अर्थात् इतरा शूद्रा का पुत्र महीदास था द्वितीय प्रमाण यह भी प्रतीत होता है कि दासान्त नाम होने से भी ऐतरेय

महीदास शूद्रकुलोत्पन्न ही था पश्चात् विद्वान् वेदवेत्ता होने से ब्राह्मण हुआ ॥

२–कक्षीवान् के विषय में जो आपने पूर्व लिखा है सो उस लेख से आप ने पृष्ठ ५४ पर लिखे अपने लेख से यह तो व्याघात दोष को अपने ऊपर ओढ़ा है क्योंकि आपने ऋग्वेद में इतिहास मान लिया है पुनः स्वमन्तव्यामन्तव्य के नियम ३ में वेदों को आपने ईश्वरीय ज्ञान माना है परन्तु इस के विरुद्ध कक्षीवान् को ब्राह्मण साबित करने के लिये वेद को इतिहास भी मान लिया है अब आपकी कौनसी बात सच्ची है ?

३–कवष ऐलूष के विषय में भी आपने अक्षरार्थ से विरुद्ध और अनृत दोष से दूषित लेख लिखा है देखिये—

ते कवषमैलूषं सोमादनयन् । दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति ॥

सरस्वती के किनारे पर ऋषियों ने बड़ा यज्ञ किया (कवष) भी उसमें थे (ते) वे ऋषि लोग बोले कि कवष ऐलूष दासी का पुत्र है और (कितवः) ज्वारी है (अब्राह्मणः) ब्राह्मण नहीं है (कथं) कैसे (नः) हमारे (मध्ये) बीच में (दीक्षिष्टे) दीक्षित हो सकता है अतः ऋषियों ने उस को सोमरस नहीं दिया–परन्तु कवष ज्ञानी थे जब ऋषियों को ज्ञात हुआ कि कवष बड़ा ज्ञानी है तब बुला कर उनको ऋषि पदवी से भूषित किया ॥ १२ । १९ । ऐत०ब्रा०

वै० व० व्य० पृ० २९ में–

धर्मशास्त्र में वीर्य प्रधान और क्षेत्र अप्रधान माना गया है ।

यस्माद्बीजप्रभावेण मनुजा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥
मनु० । १० । ७२ ॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥
मनु० । १० । ४२ ॥

इन पद्यों में क्षेत्र की अपेक्षा वीर्य प्रधान माना है। इसी लिये वर्णसंकरों में प्रतिलोम की अपेक्षा अनुलोम अच्छे माने गये हैं परन्तु उन का संकरत्व दूर नहीं हो सकता ॥

उत्तर–यहां तो आप ने दासीपुत्र को वीर्यप्रधान होने से ब्राह्मण मान लिया, परन्तु फिर भी मनु जी के विरुद्ध लिखा है कि उन में से वर्णसंकरता दूर नहीं होगी जब वर्णसंकरता दूर नहीं हो सकती तो कवष को आपने ब्राह्मण कैसे मान लिया यह (वदतो व्याघात) यानी अपनी प्रतिज्ञा को आप ही खण्डन किया इस दोष से आप नहीं बचे ॥

मनु ऋषि तो यह कहते हैं कि जिस हेतु से उत्तम बीज के प्रभाव से मनुष्यों की सन्तान ऋषि होती है और सत्करणीय प्रशंसित होती है तिस से उत्तम बीज की प्रशंसा की जाती है ॥

क्योंकि प्रत्येक युग में तप और बीज के प्रभाव से मनुष्य जाति में उच्चता और उत्तम वीर्य और तप के न होने से अथवा तप हीन केवल जन्ममात्र से नीचता उत्पन्न होती है ॥

उक्त दोनों श्लोकों के विरुद्ध आपने असम्बद्ध प्रलाप किया है क्योंकि मनुजी तो वीर्य प्रधान और तप से ऋषि हो जाना लिखते हैं परन्तु आप फिर भी उन को वर्णसंकर ही मानते हैं पुनः इस के भी विरुद्ध कवष को ब्राह्मण भी मानते हैं मालूम होता है कि भंगपान की गड़बड़ है ॥

वै० व० व्य० पृष्ठ ३० में—

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्री योनिस्त्वेव कुत्रचित् ।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ९ । ३४

उत्तर—इस का आपने अर्थ ही नहीं लिखा वह इस लिये कि इस श्लोक में महर्षि ने कहीं बीज को प्रधान और कहीं योनि को प्रधान माना है ॥

भावार्थ—कहीं बीज प्रधान है कहीं क्षेत्र प्रधान है परन्तु जहां दोनों समान हों वह उत्पत्ति प्रशस्त है ॥

कदाचित आपने इस लिये न लिखा होगा कि योनि को प्रधान मानेंगे तो धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि वीर पांडवों की उच्चता से हमारी बात कट जावेगी ॥

इस के अतिरिक्त आपने जो कवष को वीर्य प्रधान होने से ब्राह्मण मान लिया और फिर लिखा कि वर्णसंकरत्व दूर नहीं हो सकता सो इस का भी खण्डन मनुजी करते हैं देखिये—" स्वजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः १० । ४१ । " अर्थात ब्राह्मण से ब्राह्मणी में और क्षत्रिय से क्षत्रिया में वैश्य से वैश्या में ३ पुत्र ये और ब्राह्मण से क्षत्रिया में और ब्राह्मण से वैश्या में और क्षत्रिय से वैश्या में ३ ये एवं उक्त छः ६ पुत्र द्विजधर्मी हैं इस से आप का अनुलोमों को वर्णसंकर मानने का खण्डन हो गया—यहां जाति शब्द अध्यारोप से है अन्यथा वर्णसंकरत्व का आरोप न हो सकेगा ॥

वै० व० व्या० पृष्ठ ३० में—

इसी प्रकार पृषध, कारूष, नाभाग, अग्निवेश, हारीत और शौनक आदि भी सब ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न हुए। इसी कारण वे वेदों के द्रष्टा हुए, जन्म के शूद्र को कदापि वेद नहीं दीख सकता है॥

उत्तर—पण्डित जी! अब आप पौराणिक तो होही गये हैं, अतः हम आप को पुराणों से भी यह दिखलाते हैं कि पुराण भी केवल गुण, कर्म से ही वर्ण मानते हैं तथा स्वामी शंकराचार्य को भी आप अधिक प्रामाणिक मानते हैं सो उन का भी प्रमाण देते हैं, क्योंकि एक बात तो आप मान ही गये हैं कि शूद्रा में भी ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न हो तो वह ब्राह्मण है जैसे कि कवष।

भागवत में—

१—यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसोवर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥
२—पञ्चलक्षणसम्पन्नमीदृशो यो भवेद्द्विजः।
तमहं ब्राह्मणं ब्रूयां शेषा शूद्रा युधिष्ठिर॥
३—न कुलेन नजात्या वा क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥
४—न जातिर्दृश्यते राजन् गुणाः कल्याणकारकाः।
जीवितं यस्य धर्मार्थं परार्थं यस्य जीवितम्।
अहोरात्रेचरेत्क्षान्तिं तं देवाः ब्राह्मणं विदुः॥

भावार्थ-१—जिस वर्ण का जो लक्षण वर्ण को पहचानने के लिये बतलाया है उस को यदि दूसरे वर्ण के मनुष्य में भी पावें तो उस को उसी वर्ण का समझें॥

२-हे युधिष्ठिर ! पांच लक्षणों से युक्त जो द्विज हो उस को मैं ब्राह्मण कहता हूं, शेष शूद्र हैं ॥

३-हे युधिष्ठिर ! न जाति से, न कुल से कोई ब्राह्मण होता है, किन्तु वेदोक्त क्रियाकांड से ब्राह्मण होता है ॥

४-हे राजन् ! जाति से द्विजत्व कहीं नहीं दीखता, सद्गुण ही कल्याणकारक हैं । जिस का जीवन धर्म के लिये और परोपकार के लिये और रात्रि दिन वेदोक्त कर्म करने के लिये है उस को विद्वान् लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥

फिर देखिये शंकराचार्य जी क्या लिखते हैं—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ॥

इस मनुष्य योनि में जाति से न कोई ब्राह्मण होता है, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र और नाहीं कोई जाति से म्लेच्छ है, किन्तु उत्तम, मध्यम, निकृष्ट गुण कर्मों के भेद से हैं ॥

महाभारत में—

गणिकागर्भसंभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥
कैवर्त्तकीगर्भसंभूतो व्यासोनाम महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥
पंश्चल्यागर्भ संभूतो जावालिर्हि महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥
चांडालीगर्भसंभूतो मातंगो हि महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥

उक्त श्लोकों में गणिका से वसिष्ठ, धीवरी से व्यास, व्यभिचारिणी से जाबालि और चाण्डाल पुत्र मातंग तप से ब्राह्मण हुये ॥

नाभागारिष्ठपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ॥

हरिवंश पुराण अ० ११ । ६५८

नाभागारिष्ठ के दो पुत्र वैश्य से ब्राह्मण होगये ॥

फिर नाभाग भी वैश्य नहीं था । देखो भागवत स्कंध ६ अ० २ । २५ में–

नाभागोनेदिष्ठपुत्रोन्यः कर्मभिर्वैश्यतांगतः ॥

विष्णु पुराण ४ । १ । १६ में–

" नाभागो नेदिष्ठपुत्रस्तुवैश्यतामगमत् ॥ " नेदिष्ठ का पुत्र नाभाग कर्म से वैश्य वर्ण होगया ॥

ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का ऋषि गृत्समद है । उस के विषय में वायु पुराण लिखता है कि—

पुत्रो गृत्समदस्य च सुनको यस्य च सौनकः ।
ब्राह्मणाःक्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥

गृत्समद का पुत्र सुनक था । सुनक का पुत्र सौनक, उस की सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने २ विचित्र कर्मों से हुये ॥

अजमीलात् कण्वः कण्वान्मेधातिथिः यतः काण्वायनद्विजाः ॥ विष्णुपुराण ४ । १९ । १०

अजमील क्षत्रिय का पुत्र कण्व, इस का मेधातिथि, इससे कण्व गोत्र वाले ब्राह्मण हुये ॥

गर्ग गोत्र वाले ब्राह्मण भी क्षत्रिय से हुये । देखो विष्णु पुराण और भागवत—

शैन्याक्षत्रोपेता ब्राह्मणा बभूवुः । विष्णु पुराण

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्मण्यवर्त्तत

भागवत

गर्ग से शिनि, उस से गार्ग्य क्षत्रियों से ब्राह्मण हुये हरिवंश पुराण में वैदिक ऋषियों की संख्या ९१ है उन में से २५ से अधिक क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कुल से हैं ॥

सं०	उत्पत्ति कुल	नाम	वर्ण	ऋग्वेद मण्डल के ऋषि हुये ।
१	क्षत्रिय से	विश्वामित्र	ब्राह्मण	तीसरे मंडल के सूक्तोंके ऋषि हुये ।
२	गणिकापुत्र	वसिष्ठ	,,	७ मण्डल के ऋषि
३	क्षत्रिय	कण्व	,,	८ मण्डल के ,,
४	,,	अजमील	,,	४ मं० ४३ । ४४ सूक्तों के ऋषि०
५	,,	पुरुमील	,,	

कहां तक लिखें अनेक ऋषि शूद्र, वैश्य, क्षत्रियों से बने तथा ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुये ॥

वै० व० व्य० पृष्ठ ३० में—

कई लोग पुराणप्रणेता सूत को वर्णसंकर मानते हैं, परन्तु महाभारत में सूत का पिता लोमहर्षण था । सूत का असली नाम उग्रश्रवा था । सूतवंश परम्परा का सूचक चिन्ह या उपाधि है । आजकल कथा बांचने वाले को सूत या व्यास कहते हैं "सूते जनयति पुराणादिकमिति सूतः"

उत्तर—कोई पौराणिक सूत को वर्णसंकर नहीं कहता है परन्तु आप ही पृष्ठ १९ पंक्ति २१ में सूत को वर्णसंकर लिख आये हैं । अब यहां सूत को आप ऋषि बतलाते हैं आप की वाणी का ठिकाना है । गङ्गा गये गङ्गादास जमुना गये जमुनादास, सच तो यह है कि आपने सनाढ्यसमुदाय को लज्जित किया है । किसी पौराणिक पण्डित ने भी आज तक ऐसी पूर्वापर विरुद्ध अनृत व्याघात आदि अनेक दोषों से दूषित पुस्तक नहीं लिखी है ॥

वै० ध० ठ्यं० पृ० ३० में-

१-यह विषय बड़ा विस्तृत है। स्थालीपुलाक न्याय से यहां थोड़ा सा दिखलाया गया है॥

२-वेदादि सत्य शास्त्रों के अधिक विचार से यह विषय और भी रमणीय मालूम देता है॥

३-गुणग्राही मेरे इस परिश्रम से अपना मनोमन्दिर पवित्र करेंगे। अतः ग्रन्थकार भूमिका को समाप्त करता है।

उत्तर—१-स्थालीपुलाक न्याय से थोड़ा सा लिखा। जब कि यह सारा का सारा ही संदिग्धत्व से पूरित है, सो न जाने विस्तृत लेख में कहां तक टेसू के गीतों की नाईं प्रलाप करते; अतः आपने बड़ी कृपा की जो स्थाली-पुलाक में ही रम रहे॥

२-वाह २ धन्य है सत्य शास्त्रों के विचार रूपी अचार का रस आपने कौनसी गह्वर कंदरा में बैठ कर असंप्रज्ञात समाधि के द्वारा चक्खा था जो रमणीय मालूम होने लगा? अपने मुख अपनी बड़ाई!

३-क्या खूब! कृपा करके यह फलादेश और कर देते कि जो इस मेरी पुस्तक को पढ़ेगा वह मनोमन्दिर को पवित्र करके मुक्त हो जावेगा। अच्छा अब आपने भूमिका समाप्त की तो अब हम भी इस भूमि के कुत्सित जाल को छिन्न भिन्न करते हुए (का-कुत्सिता भूमि इति) अपनी समीक्षा को समाप्त करते हैं॥

❀ इति भूमिकासमीक्षा समाप्ता ❀

वैदिक वर्णव्यवस्था ॥

(जातिनिरूपण)

१-(पृ० १) आर्योद्देश्यरत्नमाला—नं० ३८में जाति का विवरण जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बनी रहै तथा जो अनेक व्यक्तियों में एक रूप से प्राप्त हो और जो ईश्वरकृत हो वह जाति कहलाती है।

२-मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। स० प्र० समु० ११ पृ० ३९८ ॥

३-जैसे मनुष्यों में मनुष्यत्व सामान्य है परन्तु पशुत्व से विशेष है, स्त्रीत्व पुरुषत्व सामान्य हैं परन्तु उन में ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व विशेष है, ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य है और क्षत्रियादिकों से विशेष है। स० प्र० समु० ३। ६१ यह विषय न्याय का है ॥

४-वेदनिन्दक को जाति पंक्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये। स० प्र० ३। ५१ यहां पर ब्राह्मणादि जाति का ग्रहण है ॥

. उत्तर-१-(यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य) यही पाण्डित्य आपका है जब कि ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व मनुष्यमात्र की व्यक्तियों में व्यापक नहीं तो ब्राह्मणत्वादि जाति कैसे, परन्तु मनुष्यत्व अर्थात् पांच ज्ञानइन्द्रिय पांच कर्मइन्द्रिय आदि की बनावट और जहां २ पर स्थित हैं और जैसी आकृति एक मनुष्य की व्यक्ति में है वैसी ही सर्वसंसारस्थ मनुष्यों

में पाई जाती है इससे मनुष्य तो जाति हैं पर ब्राह्मणादि जाति नहीं तथा यह भी ठीक है कि मनुष्य पशु पक्षी आदि जातियां ईश्वरकृत हैं और ये सब जातियां प्रलय तक ही रहती हैं यूरोपवासी मांसभक्षियों ने पशुपक्षियों की कई जातियां नष्ट करदीं जो कि अब नहीं मिलती हैं अतः ब्राह्मणादि जाति नहीं क्योंकि नाई धीवर लुहार तंबोली ब्राह्मणादि में मनुष्यत्व जाति के चिन्ह तो प्रत्यक्ष हैं परन्तु ब्राह्मणत्वादि वर्ण धर्म शब्द प्रमाणगम्य है प्रत्यक्ष गम्य नहीं ॥

२–यहां पर जो(ब्राह्मणादि को सामान्य जातिमें नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं) स०प्र० ११ समु० पं० ७ का आपने प्रमाण दिया है सो या तो आपने पूर्वापर सम्बन्ध को विचारा नहीं अथवा आपने भोले मनुष्यों को भ्रम में डालने की कोशिश की है क्योंकि जब विराम का चिन्ह देकर आगे महर्षि लिखते हैं कि—

१–" जैसे पूर्व वर्णव्यवस्था में लिख आये हैं (पृ० ८४ से ९० तक ४ समु० में) वैसे ही गुणकर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी आवश्यक है ॥ "

२–" इस मनुष्यकृत–उनके गुणकर्म स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार (४ समु० पृ० ८४) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करना राजा और विद्वानों का काम है ॥ "

इस उक्त लेख को समझने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंक्ति ७ में जो लिखा है कि जो लोग ब्राह्मणादि को सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं वह ठीक नहीं तथा पूर्वोक्त लेख से यह भी स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि वर्णों की गुणकर्मानुसार व्यवस्था करना जो जिस योग्य हो वह को

उसी वर्ण में प्रविष्ट करना यह मनुष्यकृत है, स्वाभाविक ही अपने आप बिना विद्वत्सभा वा राजा के नहीं बन सकते हैं यदि स्वाभाविक बनें तो धर्म का नाश हो जाता है। जैसे कि वर्त्तमान में बढ़ई, लुहार, सुनार, खत्री आदि बिना वेदविद्या और विद्वत्सभा के ब्राह्मणादि बन रहे हैं उनके हृदय में वेद की क्या प्रतिष्ठा है किन्तु वर्णव्यवस्था एक बाज़ीगर का खेल हो गया है।

आपने जो बिना समझे (११ समु० पृष्ठ ३९८ छठी बार के छपे हुए स० प्र० से) प्रमाण उद्धृत किया है उसमें जो शब्दों को उलट पलट से गड़बड़ प्रतीत होती है उस को हम ठीक २ पूर्वापर के सम्बन्ध सहित लिखते हैं तब सब भ्रम दूर हो जावेगा ॥ (सत्या० प्र० पृष्ठ ३९८ पं० १ से लेकर १० तक का लेख):——

प्र०—जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत ? (उत्तर) ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी है। (प्र०) कौनसा ईश्वर कृत और कौनसा मनुष्य कृत ? (उ०) मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष जलजन्तु आदि जातियां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ अश्व हस्ती आदि जातियां, वृक्षों में पीपल बड़ आम्र आदि, पक्षियों में हंस काक बकादि, जल जन्तुओं में मत्स्य मकरादि(सामान्य विशेष के भेद से) जातिभेद(ईश्वरकृत) हैं। वैसे ही मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अन्त्यजादि जातिभेद (मनुष्य) कृत हैं ॥

परन्तु (जो) मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं (उन का कहना ठीक नहीं) (अतः) जैसे पूर्व (स० प्र० ४ समु० पृष्ठ ८४ । ९०) वर्णव्यवस्था में लिख आए हैं (वैसे

ही) गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इस मनुष्यकृतत्व (ब्राह्मण जाति की) उन के (अर्थात् मनुष्यों के) गुण कर्म स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार (स० प्र० पृ० ८४। ९०) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि वर्णों की परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है॥

३-अब विचार पूर्वक देखा जावे तो महर्षि के लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है अर्थात् मनुष्य सामान्य जाति और मनुष्यों में स्त्री पुरुष सामान्य विशेषात्मक जाति हैं इसी प्रकार पशु पक्षी वृक्षादिकों में पशु पक्षी वृक्ष सामान्य और गौ घोड़ा काक शुक, अश्वत्थ वट उदुम्बरादि विशेषात्मक जाति भेद हैं॥

इस के अतिरिक्त महर्षि ने लिखा है कि जो लोग ब्राह्मणादि को विशेषात्मक जाति में गिनते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि इन को जाति कहना मनुष्यकृतत्व है सो ठीक भी है क्योंकि जाति ईश्वरकृत और मनुष्य कृत दो प्रकार की बतलाई हैं अतः पूर्वोक्त महर्षि के लेख में जो कि कोष्ठ में शब्द दिये हैं वह मेरे हैं छापे की तथा संशोधकों की गड़बड़ाध्याय से न्यूनाधिक तथा असंबद्ध लेख हो गया है॥

प्र०-अब रही यह वार्ता कि जाति को (मनुष्यकृतत्व) कैसे हो सकता है जब कि (समान प्रसवात्मिका जातिः। आकृतिग्रहणा जातिः) अर्थात् जो व्यक्तियां अपनी उत्पत्ति से समानाकृति वाली हों अथवा एकसी आकृति को ग्रहण करने वाली हों वह जाति है सो इस प्रकार की जातियां सब ईश्वरकृत हैं तो मनुष्यकृतत्व जाति कैसे॥

उत्तर-मनुष्यकृतत्व जाति अध्यारोप से है लाक्षणिक नहीं, जैसे बढ़ई लुहार कहार कुंभकार तंतुवाय धोबी तेली

तम्बोली कुरमी चमार भंगी-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि समुदायों में लाक्षणिक जातित्व किसी को भी प्रकट नहीं होता किन्तु पूछने पर ज्ञात होता है कि तुम कौन जाति हो तब वे मनुष्य बतलाते हैं कि हम ब्राह्मण धोबी लुहार कहार आदि हैं परन्तु लाक्षणिक जाति को कभी पूंछने की आवश्यकता नहीं होती है कि तुम मनुष्य हो या कि पशु। अतः पूर्वोक्त बढ़ई लुहार आदि के पृथक् २ समुदाय कर्मों के कारण होने से वे अध्यारोप से जाति कहे जाते हैं न कि लक्षण से, जो २ जिस २ कर्म के करने वाले समुदाय हुए उन २ समुदायों को उन्हीं कर्मों के नाम से पुकारना यह व्यवस्था मनुष्यकृत है न कि ईश्वरकृत अतः मनुष्यकृत जाति अध्यारोप से है। क्योंकि जैसे स्त्री पुरुषों में सामान्य विशेषों के चिन्ह प्रकट हैं तद्वत् ब्राह्मण क्षत्रियादिकों में नहीं इस लिये ब्राह्मण क्षत्रियादि सामान्य विशेषात्मक नहीं।

४—नास्तिक मनुष्य को जो जाति से बाहर करना लिखा है सो इस लेख में भी अध्यारोप से ही जाति शब्द का लेख है क्योंकि नास्तिक और आस्तिक दोनों मनुष्यों में मनुष्यत्व जाति अमिट और प्रत्यक्ष है परन्तु नास्तिकता के कर्मों को अच्छी तरह जांच-परताल करने पर ही आस्तिक समुदाय से नास्तिक को पृथक् कर सकते हैं अन्यथा नहीं ॥

वै० व० व्य० पृ० १। २ में—

१—ऋषि दयानन्द ने जाति शब्द का विवरण (नित्यत्वे सति अनेक समवेतत्वं जातेर्लक्षणम्) किया है ॥

२—गौतमऋषि ने—(समानप्रसवात्मिका जातिः २ । । ७१) समान-तुल्य-प्रसव-पैदा करना—आत्मा स्वरूप है जिस का वह जाति है ॥

३-पतञ्जलि ने-(जातेरस्त्री विषयादयोपधात् ४।१।६३) इस सूत्र के भाष्य में (जातेरित्युच्यते का जातिर्नाम) इस प्रश्न का उत्तर स्वयं श्लोक वार्त्तिक में दिया है (आकृति ग्रहणा जातिर्लिंगानां च न सर्वभाक् । सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह) आकृतिमात्र से जिस का स्वरूपज्ञान होता हो तथा समस्त लिङ्गों में न रह कर एक व्यक्ति में कथन करने से जो दूसरी व्यक्ति में बिना कथन किये ही प्रतीत हो एवं गोत्रवाचक व शाखा वाचक शब्दों से जिसका बोध हो वह जाति मानी है ॥

४-इसी प्रकार (नञ् २।२।६) इस सूत्र के भाष्य में (सर्व एते शब्दाः गुण समुदाये वर्त्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्य इति-समुदायेषुशब्दाः प्रवृत्ता अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते अवयवे जातिहीने गुणहीने च)

५-(जातिरप्राणिनाम् २।४।६) व्रीहियवम् (जाति नाम्नःकन् ५।३।८१)-सिंहकः, शरभकः (वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३) कतमो भवतां कठः।

६-(ब्राह्मो जातौ-६।४।१७१) ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः जातौ किम् ब्राह्मो नारदः। (जातेश्च ६।३।४१) शूद्र भार्यः। पाणिनि के इन सूत्रों में तथा इनके भाष्य में व्रीहि यव, सिंह, शरभ, ब्राह्मण, शूद्र आदि अनेक जातियां मानी हैं

उत्तर-१ स्वामी जी ने ठीक तो किया है कि जो निरन्तर अनेक व्यक्तियों पर वर्त्तमान होकर समानता प्रत्यक्ष हो वह जाति है ॥

२-(समानप्रसवात्मिका जातिः २ अध्याय २ आन्हिक ६७ सूत्र) द्रव्यों का आपस में भेद रहते भी जिससे समान बुद्धि उत्पन्न हो उसे जाति कहते हैं। जैसे मनुष्यों में परस्पर

कृष्णत्व गौरत्व श्वेतत्व आदि का भेद है, परन्तु मनुष्यत्व रूप से एक हैं । इसीलिये मनुष्य यह शब्द मनुष्यमात्र के लिये बोला जाता है अन्यथा पशुत्व में जातिरूप भेदक न होने से सब एकही नामसे बोले जाते । आपने सूत्र का पता भी ठीक नहीं दिया और सूत्रार्थ भी अशुद्ध लिखा है ॥

३-(जातेरस्त्री०) इस सूत्र पर जो आपने श्लोक लिखा है इससे आप की कोई अर्थसिद्धि नहीं होती है क्योंकि उक्त श्लोक में लाक्षणिक और अध्यारोपित दोनों का ग्रहण किया है अतः लाक्षणिक प्रत्यक्ष होने से प्रधान है और अध्यारोपित अप्रधान है जैसे कुक्कुटी शूकरी ये प्रधान हैं, परन्तु ब्राह्मणी कठी बह्वृची आदि गौण हैं क्योंकि कुक्कुटी कहने से तो कुक्कुटीमात्र विशेषजाति का ग्रहण होता है परन्तु ब्राह्मणी आदि कहने से एक व्यक्ति के भी पठन विषय को बिना ज्ञात किये कोई नहीं जान सकता कि यह ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञा है अतः यहां अध्यारोप से है ॥

४-(नञ् २ । २ । ६) इस सूत्र में जाति का कोई विषय नहीं है तथा भाष्य का भी अभिप्राय जाति शब्द पर नहीं है किन्तु भाष्यकार तो यह कहते हैं कि सब शब्द गुण समुदाय में व्यवहृत होते हैं यथा ब्राह्मण यह पद षडंग वेदाध्ययन करने वाले के लिये है वैसे ही क्षत्रिय वैश्यादि इसी से यह उदाहरण दिया है कि न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ।

५-(जातिरप्राणिनाम्) व्रीहियवम् (जातिनाम्नःकन्) सिंहकः शरभकः ये उदाहरण जात्यर्थ में ठीक हैं । परन्तु (वा बहूनां जाति परिप्रश्ने डतमच्) कतमो भवतां कठः इस सूत्र में बहुतों के मध्य में से एक को निश्चय करना

है अतः यह भी कह सकते हैं कि कतमो भवतां देवदत्तः अर्थात् तुम सब मनुष्यों के मध्य में देवदत्त कौनसा है इस से ज्ञात होता है कि मनुष्य जाति में से किसी एक व्यक्ति को पूछना है। इससे आप की कोई अर्थ सिद्धि नहीं।

६-" (ब्राह्मो जातौ) ब्राह्म इति निपात्यते अनपत्ये-ऽणि-ब्राह्मं हविः। अनपत्ये जातौ (ब्राह्मी) इत्यत्र प्राप्त टिलोपे सिद्धावपि ब्राह्मण इति न सिध्येत्। अन् इति प्रकृति-भावस्य दुर्वारत्वादिति भावः। ब्राह्म इति। इह अपत्ये इति न संबध्यते अन्यथा निपातनमिदं व्यर्थं स्यात इत्यादि" देखो तत्त्वबोधिनी में अतः आपका अपत्यार्थ में कहना भी व्यर्थ है। क्योंकि अजात्यर्थ में निपातन है ब्राह्मं हविः, ब्राह्मो मुहूर्त्तः, ब्राह्मः स्थालीपाकः इस लिये पूर्वोक्त सूत्रों के आधार पर ब्राह्मणादि की जाति सिद्ध करना व्यर्थ प्रयास है॥

(वै० व० व्य० पृ० ३) वास्तव में जाति नित्य है और संसार में जितने भिन्न २ रूप प्राणी दीखते हैं वह सब भिन्न २ जाति के हैं। इस प्रसंग को समाप्त करता हूं।

उत्तर—जाति स्वरूप से नित्य नहीं किन्तु प्रवाह से नित्य है क्योंकि वेदों में जाति की उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है यथा-(पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्याग्राम्या-श्च ये) अर्थात् वायव्य आरण्यक और ग्राम्य प्राणियों को ईश्वर ने उत्पन्न किया। भिन्न २ रूप का होना जाति का लक्षण नहीं क्योंकि मनुष्य पशु आदि जातियों में भी काले गोरे रूप देखने में आते हैं परन्तु काले गोरे होने से उन में से मनुष्यत्व व पशुत्वादि जाति भिन्न २ नहीं हो जाती है॥

वै० व० व्य० पृ० ३ में—

जातिभेदनिरूपणः—

पृ० ३ से लेकर पृष्ठ ५ पं० ४ तक के लेख का उत्तर पूर्व लिखा जा चुका है अतः अब इस पर पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं ॥

स्वामी जी ने ३९९ पृष्ठ ११ समु० में यूरोपियनों के विषय में जो जातिभेद लिखा है वह भी अध्यारोप से है न कि लाक्षणिक ॥

ब्राह्मणादि के अन्दर आपने जो कान्यकुब्ज गौड़ आदि क्षत्रियों में सूर्यवंशादि वैश्यों में अग्रवाल आदि शूद्रों में नापित आदि जातियां आप ने जो मनुष्य कृत मानी हैं, यह ठीक है, परन्तु ये भी अध्यारोप से हैं ॥

वेदों में अथवा यजुर्वेद के ३० अध्याय में ब्राह्मणादि अथवा सूतादि के लिये जाति शब्द से कहा है सो भी अध्यारोप से कहा है लाक्षणिक जाति नहीं ॥

॥ अथ कर्मबन्धनिरूपण ॥

१–ऋषि दयानन्द के मत से जाति और जातिभेद नित्य है ॥

२–चौरासी लाख योनियां जीव के रहने के स्थान हैं ये योनियां अनादिकाल से चली आती हैं ॥

३–ईश्वर का प्रबन्ध नित्य और ज्ञान पूर्वक है उस में किसी प्रकार का अदल बदल नहीं होता है । चोर अवश्य रहेंगे, दण्ड भी अवश्य दिया जावेगा ॥

१–जाति और जातिभेद प्रवाह से नित्य है, न कि स्वरूप से ॥

२–योनियां ८४ लाख ही नहीं किन्तु असंख्य हैं । देखिये मनुस्मृति में—

योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ।
मनु० अ० ६ श्लो० ६३

अर्थात् हजारों करोड़ों योनियों में इस जीवात्मा का जाना होता है ॥

३-माना कि चोर होते हैं और दण्ड भी दिया जाता है परन्तु दण्ड देना तो सुधार की इच्छा से है कि चोर चोरी को छोड़ कर नेकचलन बन जावे ऐसा ही देखने में भी आता है कि अनेक चोर डाकू चोरी डाकू कर्म को परित्याग करके नेकचलन बन गये हैं, ऐसे मनुष्य अभी आप को दिखला सकते हैं। इसी प्रकार परमात्मा भी पापियों को दण्ड देकर शुद्ध करते हैं अतः ईश्वर के राज्य में पापी से पुण्यात्मा और पुण्यात्मा पाप करने से पापी होता-पुनः परमात्मा पुण्यात्मा को उत्तम गति और पापियों के सुधार के लिये दण्ड देते रहते हैं यदि यह अदल बदल न होवे तो जीवात्मा की स्वतन्त्रता न रहे और पापी कभी पुण्यात्मा न हो सके तो ईश्वर की उपासनादि ही निष्फल हो जावे ॥

(वै० स० व्या० पृष्ठ ५ पं० २२) से लेकर जो पृष्ठ ८ तक कर्मबन्ध के विषय से लेख है इस में ५ स्थानों के सिवाय अन्य लेख ठीक है अतः ५ स्थानों ही पर हम लिखते हैं ॥

१-ब्राह्मण को ऋषि ने सामान्य विशेषात्मक जाति में गिना है। इसका उत्तर हम ने पूर्व देदिया है ॥

वै० स० व्या० ७ पृष्ठ पं० ५ में—

२-(सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः २ । १३) अविद्यादि क्लेश मूल जब तक रहता है तभी तक मनुष्य पशु पक्षी आदि जाति तथा नियत काल तक जीवन और

सुखदुःखादि भोग रूप कर्मविपाक रहता है जब योगी इस क्लेशमूल को छिन्न भिन्न कर देता है तो उसके लिये उक्त तीनों ही नहीं बांध सकते। इस सूत्रार्थ में जो आपने जाति शब्द से ब्राह्मणादि का ग्रहण किया है सो सूत्रार्थ से विरुद्ध है ॥ ७ पृ० पं० १३

३—योगी अवश्य इसी जन्म में अपनी आयु को त्रिगुणित बढ़ा सकता है (तन्नो अस्तु आयुषम्, यजुर्वेद) वेदों में प्रार्थना अगाड़ी के लिये है यह लिखना आप का इसलिये ठीक नहीं क्योंकि अगाड़ी तो वह मुक्त हो जावेगा फिर बिना स्थूलशरीर के किस की आयु के लिये प्रार्थना करेगा ॥ ७ । २१

४—फिर पृ० ७ पं० २४ से पृष्ठ ९ के अन्त तक आपने लिखा है कि—

मनुष्य को इस जन्म में जो सुख दुःख प्राप्त होते हैं वे पूर्व कर्मों के फल स्वरूप भोग कहलाते हैं, अतः प्रारब्ध ही के सब भोग हैं ॥

उत्तर—यह लेख आपका मिथ्या है कि वर्तमान जन्म में सारे भोग पूर्वजन्म ही के हैं, किन्तु सत्य यह है कि पूर्वजन्म के संचित कर्मों से जो वर्त्तमान जन्म में जाति आयु भोग प्राप्त हुए हैं इन में क्रियमाण का भी पुरुषार्थ मिश्रित है यदि क्रियमाण का पुरुषार्थ मिश्रित न हो तो कोई भी मनुष्य अपनी आत्मिक शारीरिक सामाजिक उन्नति नहीं कर सकता है क्योंकि पूर्व जन्म के संचित से इस जन्म में जो शरीर मिला है तथा जो कुछ भी शरीरयात्रार्थ सामग्री मिली है वह प्रारब्ध है अब उस सामग्री को बिना क्रियमाण कर्म के कोई भी प्राणी नहीं भोग सकता तथा कोई भी मनुष्य बिना क्रियमाण कर्म के इस

जन्म में अपनी उन्नति और आगे को मुक्ति की प्राप्ति का उपाय नहीं कर सकता है। इसने ज्ञात किया है कि गड़रिये का लड़का जोकि भेड़ बकरी चराता था, क्रियमाण से वीर बहादुरों के सत्संग से बहादुर बना और अपना राजवंश सदा के लिये बना गया अतः भर्तृहरि के जो प्रमाण आपने दिये हैं, वे वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण हैं॥

५-(८ पृष्ठ १४ पं०)१-वर्त्तमान शरीर प्राचीन कर्मों का फल है इसमें परिवर्त्तन होना असम्भव है-२ ईश्वर के दिये हुए शरीर का मनुष्य परिवर्त्तन नहीं कर सकता है॥

३-वर्त्तमान शरीर उन्हीं गुण-कर्म-स्वभावों का होगा जो पूर्वजन्म का प्रारब्ध है परिवर्त्तन अगले शरीर में हो सकता है॥

उत्तर—भला जी! आप के माता पिता तो त्याग स्वभाव वाले थे, निर्लोभी थे, मोटा गाढ़ा पहनते थे, तप करते थे, तो आपका गुण-कर्म-स्वभाव क्यों बदल गया? जो रात्रिदिवस धनसंचय और फ़ेशन विदेशी चटक मटक का संध्या अग्निहोत्र भी नदारद! तथा आप के ताऊ जी तो नित्यप्रति संध्या अग्निहोत्र वेद पाठ करते थे, उनका पुत्र आपका भ्राता क्यों निरक्षर रह गया और क्यों पढ़ने में रुचि नहीं?

२-जब कि ईश्वर ने स्वयमेव वेदों में उपदेश दिया है कि मेरी कल्याणीवाणी का उपदेश देकर सब मनुष्यमात्र का सुधार इसी जन्म में करो तो फिर परिवर्त्तन क्यों नहीं हो सकता है जब कि पूर्णानन्द जी, आर्यमुनि जी हरिप्रसाद जी आदि अनेक विद्वान् ऐसे हैं कि जो ब्राह्मणकुल से नहीं उनके कुल में विद्या भी नहीं थी फिर इसी जन्म में उनका परिवर्त्तन क्यों हो गया और क्यों विद्वान्

हो गये ? तथा आजकल वेदान्त के बड़े २ धुरन्धर विद्वान् जो कि ब्राह्मणेतर जातियों में से हैं क्यों विद्वान् हो गये हैं?

६—भला जब इस जन्म में पूर्वजन्म के कर्मों ही का गुण-कर्म-स्वभाव रहेगा बदलेगा नहीं तो अगले जन्म में भी उससे पूर्व के गुण-कर्म स्वभाव रहेंगे वहां कैसे बदल जावेंगे क्योंकि आप की तो परिभाषा बन गई कि पूर्व जन्म के गुणादि अगले में परिवर्त्तन नहीं हो सकते हैं। वाह धन्य है आप की समझ को, सच तो यह है कि आप इन गुण-कर्म-स्वभावों के स्वरूप को जानते होते तो कभी ऐसा निकृष्ट पुस्तक न लिखते–देखिये जीवात्मा के स्वाभाविक गुण-कर्म क्या हैं। ज्ञान और प्रयत्न—सत्व रज तम ये प्राकृतिक हैं। सत चित आनन्द सर्वज्ञता सृष्टि कर्तृत्वादि ईश्वरीय हैं। जब जीवात्मा अपने ज्ञान और प्रयत्न को प्राकृत गुण, कर्म, स्वभावों में लीन कर देता है तब बंध का भागी होता है जब ईश्वरीय गुण, कर्मों में लगा देता है तब मुक्त होता है। अतः बंध और मुक्त दोनों नैमित्तिक हैं। जीवात्मा में ये दोनों स्वाभाविक नहीं, यदि स्वाभाविक होता तो कोई एक ही होता वह कहीं कभी न बदलता। अतः मनुष्ययोनि में प्राकृतिक और ईश्वरीय दोनों के गुण, कर्म, स्वभावों में से जीवात्मा के लिये जो प्रबल हो जावेंगे उन्हीं का अनुगामी जीवात्मा होजाता है, क्योंकि दोनों नैमित्तिक हैं॥ इति कर्मबन्धः समाप्तः॥

वै० व० व्य० पृष्ठ-१०पं० ८ तक विकासवाद का प्रकरण है, परन्तु पण्डित जी ने उत्कट रीति तथा न्यायदर्शन के अनुसार इस का खण्डन नहीं किया है, किन्तु आर्यसमाज में विकासवादियों को बतला कर उन को झाड़ बताई है॥

१–यह कि वे आर्यसमाज को गंदा करने के लिये आर्यसमाज में आते हैं ॥ २–यह कि वे कुत्ते बिल्लियों के साथ खाते हैं ॥ ३–यह कि आचार विचार को तिलाञ्जलि देकर सब के हाथ का खाना पीना आरम्भ करते हैं ॥

आगे लिखते हैं कि यही हमारे मतभेद होने का कारण है ॥

उत्तर–पण्डित जी ! यदि ऐसे आदमी आर्यसमाज में हैं तो उन को जाहिर करना चाहिये कि जिस से हम भी उन को फटकार बतावें और स्पष्ट कह देवें कि तुम आर्यसमाज से पृथक् होजाओ, क्योंकि गुप्तरूप से अधर्म करते हो । इस मतभेद के कारण आप को पृथक् होना नहीं चाहिये था बल्कि समाज में रहते हुये भी उन की अच्छी तरह से खबर ले सकते थे । जब कि हम धर्म के लिये आर्यसमाज में आये हैं तो हमें भय किस का ?

॥ इति विकासवाद ॥

अथ गुणमीमांसा

वै० स० व्या० पृ० १० पं० ९ से—

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

गीता १८ । ४०

संसार के समस्त पृथिव्यादि लोकों में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो सत्व, रज, तम इन तीन प्राकृतिक गुणों से खाली हो ॥ ऐसा ही ऋषि दयानन्द ने भी ९ स० २६६ पृ० में लिखा है ॥

सत्वंरजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितोभावान् महान्सर्वानशेषतः २४

यो यदैषां गुणोदेहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदातद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥ १२।२५

सत्व, रज, तम; ये तीन जीवात्मा के गुण हैं । इन तीन के आधार पर वह समस्त शरीरों में व्याप्त होकर रहता है ॥ २४ ॥

जिस समय में जिस शरीर के अन्दर जो गुण अधिक बढ़ जाता है उस समय में वह उस को अपने वश में कर लेता है ॥ २५ ॥

उत्तर—गीता के श्लोक का अर्थ ठीक है, परन्तु मनु-स्मृति श्लोकार्थ में भूल की है—सत्वादि तीनों गुणों को प्रकृति के गुण न मानकर जीवात्मा के गुण लिखना शास्त्र-विरुद्ध है । सो आत्मा शब्द को देख कर आप भ्रम में पड़ गये हैं तभी तो आपने जीवात्मा को सर्व शरीरों में व्यापक लिख दिया, परन्तु जीवात्मा परिच्छिन्न है व्यापक नहीं। श्लोक २५ का भी अर्थ अशुद्ध है कि वे तीन गुण अपनी अधिकता से शरीर को वश में कर लेते हैं जब कि शरीर भी प्राकृतिक है तो अपने को अपने ही से वश में करलेना कैसा ? अतः स्पष्टार्थ यह होना चाहिये कि शरीर के अन्दर तीनों गुणों में से जो प्रबल होता है वही गुण अपने लक्षण युक्त प्राणी को कर देता है जैसे सत्व गुण प्रबल होता है तो आत्मा सत्वगुणी होता है, रज से रजोगुणी, तम से तमोगुणी ।

वै० व० व्य० पृ० ११ से १३ तक पं० ८—

इस लेख में गुणों के विषय में बहुतसा लेख ठीक है, परन्तु जितना शास्त्रविरुद्ध है उसी का उत्तर लिखते हैं ।

१–पृष्ठ ११ में जो ८४ लाख योनि लिखी हैं सो ठीक नहीं किन्तु अनेक हैं।

२–पृष्ठ १२ में जो विद्या को अनित्य और उपचार के गुणों में माना है यह ठीक नहीं, क्योंकि विद्या ईश्वर का गुण है और उस में नित्य है।

३–पुनः पृष्ठ १२ पं० २२ में लिखा है कि सामान्य ज्ञान कीट पतंगादि में रहता है और विशेष ज्ञान केवल मनुष्य में रहता है यह लेख भी शास्त्रविरुद्ध है, क्योंकि विशेष ज्ञान ईश्वर की तरफ से होता है।

४–आगे दो श्लोक मनु० अ० १ श्लोक ९६। ९७ प्रमाण देकर पण्डित जी ने अपना मनमाना अर्थ घड़कर लिखा है कि उक्त श्लोकों में ब्राह्मण को जातिमात्र से अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ माना है उससे श्रेष्ठ विद्वान् को कहा है॥

परन्तु यह विचार आप का पूर्वापर प्रकरणविरुद्ध है देखिये——

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः तेषु वै बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥९६
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥

उक्त श्लोकों में बिना पढ़े साधारण नरों में वेदपाठी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणों में भी अधिक विद्वान् श्रेष्ठ है। विद्वानों में भी वेदोक्त कर्मकर्त्ता श्रेष्ठ है। वेदोक्त कर्म कर्त्ताओं में भी आप और अन्यों को करने कराने वाला श्रेष्ठ है उन में भी ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ है।

ये उक्त दर्जे सम्पूर्ण ब्राह्मणों ही के अन्दर बयान किये हैं इस का दृढ़ प्रमाण आगे के श्लोक से मिलता है देखिये—

ब्राह्मणो जायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोषस्य गुप्तये ॥

वेदविद्या रूपी माता के गर्भ से ब्राह्मण का उत्पन्न होना ही पृथ्वी पर श्रेष्ठ होता है क्योंकि वैदिकधर्मरूपी कोष की रक्षा के लिये वह प्रभु है यदि बिना पढ़े मनुष्य को जाति से ब्राह्मण कहने का अभिप्राय होता तो इस अगले श्लोक में ब्राह्मण को सम्पूर्ण प्राणियों का प्रभु और धर्मकोष का रक्षक न कहते । अतः जाति से ब्राह्मण कहना आपका प्रामादिक लेख है ॥

इसके आगे पृ० १३ पं० ९ से गुणविवरण है ॥

इस गुणविवरण प्रकरण में आपने मनुस्मृति के १२ अध्याय के श्लोकों को प्रमाण देकर सत्वरज और तमोगुण के भेदों से अनेक प्रकार की योनियों में जीवात्माओं का गमनागमन लिखा है सो इस में कोई वार्ता सिद्धान्तविरुद्ध नहीं अतः विशृपेषण करना व्यर्थ है । यह १३ पृष्ठ से १५ पृ० पं० २१ तक की समीक्षा समाप्त हुई ॥

अथ कर्ममीमांसा-पृष्ठ १५ पं० २२ से पृ० १६ पंक्ति १४ तक—

१-जड़ पदार्थों में जो गति है वह कर्म नहीं किन्तु उनका स्वभाव है ॥

२-गुण के आधार पर कर्म रहता है कर्म के आधार पर गुण नहीं ॥

३—संसार में जितने कर्म होते हैं वे विद्वत्ता और मूर्खता इन दो गुणों के आधार पर होते हैं ॥

उत्तर——यद्यपि कर्म मीमांसा में और भी लेख है, परन्तु जो शास्त्रविरुद्ध अंश है उसी को हमने समाधानार्थ उद्धृत किया है ॥

१—यदि पण्डित जी ने दर्शनशास्त्र पढ़े होते तो ऐसा कदापि न लिखते कि जड़ पदार्थों में जो गति है वह कर्म नहीं क्योंकि (उत्क्षेपणावक्षेपणाकुंचनप्रसारणगमनमिति कर्माणि) इस सूत्र में कणाद जी ने गति को कर्मों में गिना है ॥

२—यह लेख भी वैशेषिक विरुद्ध है कि गुण के आधार पर कर्म रहता है, कर्म के आधार पर गुण नहीं, किन्तु गुण और कर्म दोनों ही का द्रव्य आधार है क्योंकि द्रव्य के बिना गुण और कर्म दोनों नहीं रह सकते ॥

३—यह भी प्रत्यक्ष विरुद्ध है कि (सब कर्म विद्वत्ता और मूर्खता इन दो गुणों के आधार पर होते हैं) क्योंकि उक्त दोनों ही गुण कर्मों के आधार नहीं——

आगे पृष्ठ १६ पं० १५ से पृ० १८ पं० १७ तक कर्मविवरण में कोई उद्धृत करने योग्य बात नहीं ॥

आगे पृ० १९ पं० १८ से पृ० २२ पं० ३ तक स्वभाव विवरण और स्वभाव मीमांसा है ॥

१—पृ० १९—स्वभाव शब्द में स्व और भाव दो शब्द हैं। स्व शब्द का अर्थ पतंजलि जी ने आत्मा अर्थ किया है आत्मा का अर्थ कोष के आधार पर शरीर होता है ॥

२—भाव शब्द सत्ता अस्तित्व के अर्थ में आता है। (स्वस्य आत्मनो देहस्य भावः अस्तित्वं स्वभावः) जिसका कभी नाश न हो वह स्वभाव कहाता है ॥

३-संस्कृत ग्रन्थों में (प्रकृति, निसर्ग, धर्म, स्वभाव) ये पर्यायवाचक शब्द मिलते हैं जिनके कतिपय उदाहरण हम यहां उद्धृत करते हैं ॥

सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला-पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥१॥ यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥ २ ॥ प्रकृतिरेव सतामविषादिता ॥ ३ ॥ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ४ ॥

इत्यादि अन्य भी कई श्लोक हैं ॥

उत्तर—आपने जो स्वभाव के अर्थनिर्णय के लिये जितने भी श्लोक लिखे हैं उन में से एक भी प्रमाण ऐसा नहीं है जोकि स्वभाव को अविनाशी बतावे अथवा गुण, कर्म को छोड़ कर स्वभाव का स्वरूप बोध करावे ॥

१-प्रथम आपने (स्व) का अर्थ देह और (भाव) का अर्थ सत्ता अर्थात् देह की सत्ता २ पुनः लिखा है कि जिसका कभी नाश नहो वह स्वभाव कहाता है परन्तु यह कथन बिलकुल अज्ञान से है क्योंकि जब स्वभाव का अर्थ देहास्तित्व है तो देह नाशवान् है तो स्वभाव अविनाशी कैसे ॥

जो पुरुष सज्जन महात्मा गोदुग्ध की मधुरता भूत-प्रकृति आदि के जो स्वभावों का दृष्टान्त दिया है वे सब विनाशी पदार्थ हैं फिर विनाशी पदार्थों का स्वभाव अविनाशी कैसे हो सकता है क्योंकि स्वभावी के नष्ट होने पर स्वभाव नहीं रह सकता है ।

१-अतः सच्चा नियम यह है कि नित्यपदार्थों का स्वभाव नित्य होता है अनित्यों का अनित्य । जैसे (स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च) ईश्वर नित्य है ।

अतः उस का ज्ञान बल और क्रिया से युक्त स्वभाव भी नित्य है ॥

२–जीवात्मा नित्य है अतः उसका ज्ञान और प्रयत्न से युक्त स्वभाव भी नित्य है ॥

३–परन्तु दुःस्वभाव, सुस्वभाव दुरात्मत्व महात्मत्व ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व नीचत्व उच्चत्व बन्धत्व मुक्तत्व आदि भाव सर्व नैमित्तिक हैं, क्योंकि जब मनुष्य देहविशिष्ट जीवात्मा में वैदिक ज्ञान कर्म नियत होते हैं तब जीवात्मा उच्चत्व महत्त्व मुक्तत्व आदि श्रेष्ठ भावों से युक्त होता है इसके अतिरिक्त तमोगुण अविद्यास्मिता रागद्वेषादि से युक्त होता है तो नीचत्व भावों को प्राप्त होता है ॥

४–आपने स्वभावमीमांसा प्रकरण में स्वभाव शब्द का निर्वचन ठीक नहीं कर पाया और कर भी किस प्रकार सकते हैं जब कि आत्मा स्वाधीन है ॥

५–हम आप से प्रणपूर्वक कहते हैं कि आप गुण, कर्म दोनों को छोड़ कर स्वभाव का निर्वचन जन्म जन्मान्तरों में भी नहीं कर सकते हैं।

पृष्ठ १९ में जो आपने हारीत के प्रतिपादित शील को स्वभाव का पर्यायी मानने में इंकार किया है सो यह कथन आपका प्रामादिक है जैसा कि हारीत वाक्य में— ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्तित्व, सौम्यता, अपरोपतापिता, अनसूया, मृदुता, अपारुष्य, मैत्रता, प्रियवादित्वं, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्यं, प्रशान्तिश्चेति त्रयोदशविधं शीलम्– यह १३ प्रकार का शील धर्मात्माओं का कहा है ॥

इस के आगे जो आपने पृष्ठ २१ पं० २२ स्वभावार्थ में योग्यता का ग्रहण किया है यह भी लेख अप्रमाण और

प्रामादिक है। क्योंकि (पदार्थानां परस्परसंबन्धे बाधाभावः) यह विश्वनाथ का और (अर्थाबाधो योग्यता) यह अन्न-भट्ट का प्रमाण दिया है सो दोनों वाक्यों में स्वभाव का पर्यायी योग्यता नहीं कहा गया किन्तु पद और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध में जो बाधाभाव है तथा अर्थ के अबाध को योग्यता कहते हैं इन में कहीं भी स्वभाव के विषय में योग्यता का पता नहीं और इसी लिये आपने उक्त वाक्य-खण्डों का पता भी नहीं दिया है कि कहीं कलई न खुल जावे। यदि कहो कि कर्मों का गुणों और गुणों का स्वभाव से जो परस्पर सम्बन्ध है वही योग्यता है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि गुण कर्मों को छोड़ कर जब तक कि पृथक् स्वभाव का लक्षण न करो तब तक सम्बन्ध कैसा—और यदि दुर्जनतोष न्याय से मान भी लेवें तो सम्बन्ध का नाम योग्यता हुआ न कि स्वभाव का॥

पूर्वोक्त दो वाक्य और (अर्थोऽभिधेयम्) कात्यायन जी का उक्त तीनों वाक्य व्याकरण विषयक आचार्य के अबाध विषय में योग्यता का वर्णन करते हैं न कि तुम्हारे स्वभाव का; अतः यहां तो आप ने अपनी योग्यता का ऐसा परिचय दिया कि मानों वह आप के स्वभाव को विक्षिप्त जान तिलाञ्जलि देकर चल दी और आप उस बिचारी योग्यता के पिछाड़ी २ दौड़े जा रहे हैं कि अरी ठहरियो २ स्वामी जी ने भी योग्यता शब्द का प्रयोग स्व-भाव के अर्थ में किया है जब ऐसा अनर्थ वाक्य आप के मुख से सुना तब तो योग्यता को निश्चय हो गया कि अब इस पुरुष के स्वभाव में मेरे ठहरने को जगह नहीं। अतः वह सदा के लिये आप के पास से चंपत हो गई। उसी के आप से आप को अथर्ववेद में भूत प्रेतों की लीला दीखने

लगी है। यह आप की स्वभाव मीमांसा और स्वभाव विवरण समीक्षा समाप्त हुई ॥

पारिभाषिक विवरण

पृष्ठ २२ पं० ४ से पृ० २५ पं० ८ तक पारिभाषिक प्रकरण का लेख है इस प्रकरण में भी बहुतसा भाग व्यर्थ है अतः समीक्षा योग्य अंश को ही हम उद्धृत करते हैं ॥

आपस्तंब १

धर्मचर्यया जघन्योवर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णः जघन्यं २ वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥

इस में जाति और वर्ण दोनें शब्द आये हैं (परिवर्त्तनं परिवृत्तिः, जातेः परिवृत्तिः=जातिपरिवृत्तिः तस्यां जातिपरिवृत्तौ सत्याम्) परिवृत्ति का अर्थ बदलना होता है, जाति अर्थात् शरीर के बदलनें पर क्रमशः किसी वर्ण का बदलना होता है। वर्ण और जाति ये दोनें एकार्थ के वाची नहीं ॥

उत्तर–पीछे तो आप वर्ण शब्द का पर्यायी जातिशब्द को लिख आये हैं और अब यहां पर कहते हैं कि एकार्थवाची नहीं। यह परस्पर विरोध कैसे ? फिर आप लिखते हैं कि शरीर के बदलने पर वर्ण बदलेगा, यदि शरीर किसी जीवात्मा को पशु पक्षी का मिला तो वहां वर्णव्यवस्था कहां ? क्योंकि वर्णव्यवस्था तो मनुष्यजाति में होती है। अतः उक्त अर्थ आप का प्रामादिक है यदि कहो कि जिन को मनुष्य जाति में जन्म मिलेगा उनमें तो वर्ण परिवर्त्तन होगा तो प्रश्न यह है कि जो पूर्वजन्म में

ब्राह्मण था वह द्वितीय जन्म में अधर्म करने से अन्त्यज वा शूद्र हुआ और जो शूद्र था वह कर्म से ब्राह्मण होगया यह कैसे पता लगाओगे ? द्वितीय प्रश्न यह है कि जब इसी जन्म में ऊंची नीची कक्षाओं में चढ़ने उतरने का अधिकार नहीं है तो लोक में धर्माधर्म के करने में किसी को भी उत्साह व लज्जा नहीं होगी । तीसरा प्रश्न यह है कि जो जन्माभिमानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि ईसाई व मुसलमान होगये हैं क्या उनका वर्ण नहीं बदला है? अतः यह पूर्वोक्त अर्थ भी आप का शास्त्रविरुद्ध है ।

अतः सत्यार्थ यह है कि उक्त वाक्य में अध्यारोप से वर्ण को जाति कहा है तब सीधा अर्थ यह होता है कि वेदोक्तधर्म का आचरण करने से नीचे २ के वर्ण ऊपर २ के वर्णों में दाखिल हो सकते हैं यह वर्णपरिवर्त्तन में विधि है, तथा अधर्मचर्या से पूर्व २ अर्थात् ब्राह्मणादि वर्ण जघन्य अर्थात् नीचे वर्णों में परिवर्त्तित होते हैं । जैसे कि हम पूर्व लिख चुके हैं ॥ पृष्ठ २२ में—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ॥१॥
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥२॥
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥३॥

मनु के इन प्रमाणों में जहां पर ब्राह्मणता शूद्रता आदि प्रयोग आये हैं वहां पर सादृश्यार्थ में आये हैं ॥

" तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्वं सादृश्यम् " यह सादृश्य का लक्षण है । भिन्न होने पर कुछ गुणों में समान होना सादृश्य कहाता है । जैसे (चन्द्रवद् रमणीमुखम्) यदि सर्वांश में एकता मानी जावे तो रमणी का मुख चन्द्रमा हो जाना चाहिये ॥

उत्तर–यहां तो आपने पठित व्याकरण को भी भुला दिया जो (त्व-तल्) प्रत्यय भाव में होते हैं उन को सादृश्यार्थ में लिखते हो। यह कितनी बड़ी भूल है–केवल एक उदाहरण (शूद्रवत्) में (वति) प्रत्यय सादृश्यार्थ है परन्तु (शूद्रता, ब्राह्मणता, शूद्रत्वम्) इन में त्व और तल् प्रत्यय भाव में हुए हैं नकि सादृश्यार्थ में। घटस्य भावो घटत्वं क्या यहां सादृश्यार्थ है? इसी प्रकार (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) शूद्र ब्राह्मणतां अर्थात् ब्राह्मणभाव को प्राप्त होता है (ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्) ब्राह्मण शूद्रता को यानी शूद्र के भाव को प्राप्त हो जावे इसी प्रकार—

योनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥मनु०॥

जो द्विज वेद को न पढ़ कर अन्य पुराणादिकों में श्रम करता है वह इसी जीवन में शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। यहां पर भी (त्व) प्रत्यय सादृश्यार्थ में नहीं है। शेष लेख इस प्रकरण में समीक्षा करने के योग्य नहीं, क्योंकि कोई लेख विरुद्ध नहीं॥

वै० व० व्य० पृष्ठ ३३ में–

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो विडालकः ।
पशुर्म्लेच्छस्तु चांडालोविप्रा दशविधाः स्मृताः॥

स्मृति के इस प्रमाण से दश प्रकार के ब्राह्मण माने गये हैं। क्षत्रिय वैश्य भी दश २ प्रकार के माने गये हैं॥

उत्तर–मनु के सिवाय कोई स्मृति प्रामाणिक नहीं हो सकती है तथा जिस स्मृति में यह वाक्य है वह किसी मूढ़ की रची हुई है फिर देव १ मुनि २ द्विज ३ राजा ४ वैश्य ५

शूद्र ६ बिडाल ७ पशु ८ म्लेच्छ ९ चांडाल १०, ये दश ही भेद क्यों किये ? पक्षी वृक्ष पत्थर कूकर शूकर ये भी मिला देते तो १५ भेद हो जाते। फिर जब कि आप बिल्ली और चांडाल को भी ब्राह्मण मानते हैं तो सभी आपके बिरादर भाई हुए, खण्डन किस का करते हो ?

॥ इति पारिभाषिकप्रकरणः समाप्तः ॥

शरीरपरिस्थिति प्रकरण पृष्ठ २५

१-कहीं पर बीज अच्छा होता है कहीं पर योनि अच्छी होती है जहां पर दोनों बराबर हों वह शरीर अच्छा माना जाता है ॥

२-रज वीर्य का अच्छा होना मनुष्य के आहार पर निर्भर है ॥

३-सात्विक, राजस, तामस आहारों के होने से वीर्य भी वैसा ही बनता है ॥

उत्तर-अच्छा तो उक्त लेख से यह तो बतलाइये कि जो नामधारी ब्राह्मण मद्य मांस खाते पीते हैं वे कौन जाति के हैं और उन से पैदा सन्तान तमोगुणी वर्णसंकर होगी वा नहीं ? क्योंकि नम्बर २ । ३ में आपने आहार को राजस तामस सात्विक कह कर वैसा ही वीर्य होना माना है अतः नं० ३ में जिन स्त्री पुरुषों का सात्विक आहार होगा उन्हीं में सात्विक रज और वीर्य उत्पन्न होगा, अतः उन्हीं की संतान सत्वगुणी होगी, शेष की नीच ॥

वै० व० व्य० पृ० २६ में——

तपः श्रुतञ्च योनिश्च एतद्ब्राह्मणकारकम् ।
तपः श्रुतिभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥

महाभाष्य

उत्तर-यह ठीक है कि तप और वेदाध्ययन और वेदज्ञ माता पिता ये तीन ब्राह्मणत्व के कारण हैं तप और वेद के न होने पर मूर्ख माता की संतान नाम मात्र की ब्राह्मण लोक में कही जायगी, वास्तव में नहीं जैसे देहली के शाहज़ादे परन्तु हुकूमत व राज्य नहीं। सो थोड़े दिन ही यह ज़िकर चलता है पुनः जब ईसाई वा मुसलमान हो जाते हैं तो दीर्घ काल में उत्तरोत्तर विस्मृति हो जाने से वह जाति वा नाम भी छूट जाता है। अतः यहां महाभाष्यकार का अभिप्राय लोकगति से मूर्ख को जाति शब्द से कहा है न कि शास्त्रदृष्टि से। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है कि जैसे काठ का हाथी चाम का मृग और अनधीत ब्राह्मण ये तीनों नाम ही के धारण करने वाले हैं, गुण कर्म से नहीं ॥

फिर यह भी कहा है कि (नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम्) अर्थात् वेद से हीन अज्ञानी को दिया हुआ हव्य कव्य नाश को प्राप्त होता है और दाता भी नरकगामी होता है तब जाति वा नाममात्र का ब्राह्मण तो नाश का हेतु हुआ ॥

पृ० २७-(अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेत) यज्ञोपवीत होने से पहले वह अवश्य मूर्ख होता है पुनः उस को ब्राह्मण मान कर यज्ञोपवीत दिया जाता है।

उत्तर-उक्त वाक्य पर पारस्करादि सूत्रकारों का यह मत है कि भावी संज्ञा के आधार पर ब्राह्मणादि पद बालकों के वास्ते कहा गया है जैसे कि राजा के पुत्र को राजा आगे राजा होने ही की इच्छा से कहा जाता है॥

पृष्ठ २८ पं० १२- सब द्विज एक नहीं, क्योंकि उन में ईश्वरकृत जातिभेद है, वह अनादि काल से चला आता है॥

उत्तर—यह आपने अच्छी गप्प लिखदी । अनादि-काल से होता तो गजनीगढ़ यादव रजपूतों का निर्माण किया हुआ है जब गन्धार के निवासी सब क्षत्रिय थे, ईरान के निवासी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चारों वर्ण थे, यह पारसियों की पुस्तकों से साबित है फिर वे द्विज से आज मुसलमान हैं । यदि द्विजों में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति ईश्वरकृत होतीं तो किसकी सामर्थ्य थी कि जो ईश्वर-कृतकार्य में रद्दोबदल कर देता? परन्तु ईश्वरकृत मनुष्य जाति को कोई भी मुसलमान ईसाई नहीं मिटा सका, अतः आप का कथन भ्रमात्मक है ॥

पृ० ८८ पं० १४—वेद का जानना ईश्वर का पहिचानना ब्राह्मणत्व का कारण नहीं, जब तक उस में गुण-कर्म स्वभाव तीनों विद्यमान न हों ॥

उत्तर—पण्डित जी! आप को किस पिशाचिनी माया ने तंग कर डाला है कि मार असंबद्ध प्रलाप लिख डाला है । उक्त दोनों बातें अन्योन्याश्रय से हैं अर्थात् जब तक किसी व्यक्ति में वेदोक्त गुण, कर्म, स्वभाव न हों तब तक वह वेद वा ईश्वर को पहिचान नहीं सकता और जब ईश्वर और वेदों को जानता है तो उसमें वेदोक्त गुण, कर्म, स्वभाव अवश्य हैं । ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः । परन्तु आप जो कहते हैं कि कैसा ही अज्ञानी क्यों न हो तौ भी वह ब्राह्मण नामधारी रहेगा । नाम से अलग कोई नहीं कर सकता, यह भी कहना आप का ठीक नहीं क्योंकि मनु जी उसको शूद्रवत् द्विजों से बाहर निकाल देने की आज्ञा देते हैं:—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

जो द्विज प्रातः और सायंकाल को सन्ध्योपासन नहीं करता उस को सम्पूर्ण द्विज कर्मों से शूद्रवत् निकाल देना चाहिये ॥

पृष्ठ २९, पं० ३-से जो आपने लिखा है कि (ब्राह्मण कुलोत्पन्नत्वेसति तपोविद्याविशिष्टत्वं ब्राह्मणत्वम्) इत्यादि ॥

उत्तर—यह लक्षण किसी शास्त्र में नहीं किया गया किन्तु कपोलकल्पित है पर तौ भी कुलपरम्परा में भी ब्राह्मणत्व होता है। जिन कुलों में कि वेदविद्या और वेदोक्त आचार स्थिरता से चला आता हो परन्तु यह नीचे से ऊंचे पर चढ़ने वालों के लिये बाधक नहीं। यथा पुंश्चल्यां गर्भसम्भूतो जाबालिर्हि महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्। भविष्य अ०४२।

पृ०३०, पं०८-ब्रह्मविद्या के परीक्षकों में राजा जनक भी परीक्षक थे। क्षत्रियादिकों में कर्मेन्द्रियां हैं, ज्ञानेन्द्रियां नहीं॥

उत्तर—यदि क्षत्रियादिकों में कर्मेन्द्रियां ही होतीं और ज्ञानेन्द्रियां न होतीं तो राजा जनक ब्रह्मविद्या के परीक्षक कैसे माने गये? क्यों शुकदेवादि परीक्षा देने को गये? और राजा अश्वपति से छः ऋषियों ने क्यों ज्ञान प्राप्त किया?

पृ० ३० पं० २१ में-(क्षत्रिय जातयः। वृषलत्वं गताः) मनु० १०। ४३॥

उत्तर—आप तो इस जन्म में वर्ण का परिवर्त्तन मानते ही नहीं, परन्तु अब यह परस्परविरुद्ध लेख कैसे

लिख बैठे कि ब्राह्मणों के अदर्शन से क्षत्रिय लोग वृषल अर्थात् चाण्डाल होगये और जो ब्राह्मण इस समय तांत्रिक वामी हैं उन्हें भी ब्राह्मण ही कहोगे क्या ? ॥

पृ० ३१ पं० ४—भूदेव कदापि स्वार्थी नहीं होते हैं, सर्वदा परोपकारी ही रहते हैं ।

उ०——यदि सर्वदा परोपकारी ही रहते हैं तो क्या मांस मद्यपायी गया के पण्डा जो दान लेकर वेश्या रखते नचाते भोगते इसी प्रकार के अन्य भी तीर्थों के पंडे सब क्या ये सभी परोपकारी हैं ?

पृष्ठ ३१ पं० ९ से पृष्ठ ३३ पंक्ति ६ तक का उत्तर उपोद्घात प्रकरण में हो चुका है ॥

—*—इति शरीरपरिस्थिति प्रकरण—*—

* अथावश्यक प्रमाणविवरण *

आवश्यक प्रकरण में समीक्षा योग्य केवल " यथेमां वाचम् " का जो मनघड़न्त पंडित जी का अर्थ है यही अंश है शेष पृ० ३१ पं० ८ से लेकर पृष्ठ ३६ पं० २१ तक अध्यारोप से जाति का वर्णन और पढ़ाने का अधिकार ब्राह्मण को है इत्यादि महर्षि मनु व गीतादि के वचनों से किया है । इसमें कोई विशेष वार्त्ता विरुद्ध नहीं ।

वै० व० व्य० पृ० ३३ पं० २० में—

जन्मना ब्राह्मणोज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
वेदाभ्यासाच्च विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥

प्रायश्चित्तविवेक

अर्थ—जन्म से ब्राह्मण, संस्कार होने से द्विज, वेदाभ्यास से विप्र और तीनों से श्रोत्रिय कहा जाता है ।

उत्तर-उक्त श्लोक मनुस्मृति के विरुद्ध है तथा आप ने भी पृष्ठ ३४ में लिखा है कि-

वेदार्थोपनिबंधृत्वात्प्राधान्यंहि मनोःस्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥

बृहस्पतिस्मृति

वेदानुकूल होने से मनु महर्षि की ही स्मृति को प्रधानत्व है। यह मनु के अर्थ से विरुद्ध जो स्मृति है वह प्रशंसित नहीं। क्योंकि आपके उक्त श्लोक के खंडन में किसी स्मृति का यह श्लोक भी है। यथा—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ।
वेदपाठी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥१॥

जन्म से सब बालक शूद्र होते हैं, उपनयन संस्कार होने पर द्विज और वेद पढ़लेने पर विप्र और जब तपोबल योगाभ्यास के द्वारा परमात्मा को साक्षात् कर लेता है तब ब्राह्मण होता है।

बतलाइये अब किस को ठीक मानोगे? सत्य तो यह है कि यह श्लोक मनु से तथा ब्राह्मण शब्द की व्युत्पत्ति से विरोध नहीं करता। अतः यही मानना योग्य है।

वै० व० व्य० पृ० ३४ पं० १७ से—

(स्वाध्यायेनव्रतैः) इस २। २८ मनु के श्लोक पर जो आपने लिखा है कि उक्त श्लोक में जातिपरक ब्राह्मण का ग्रहण नहीं है सो तो ठीक है, परन्तु (ब्राह्मीयं क्रियते तनुः) का अर्थ आप ने सब आचार्यों के विरुद्ध लिखा है। स्पष्टार्थ तो ऐसा है कि-स्वाध्याय वेदोक्तकर्म हवन यज्ञादि के द्वारा (तनुः) यह शरीर (ब्राह्मीयं) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है।

वै० व० व्य० पृ० ३५ पं० ७ —

" उपासते ये गृहस्था : " मनु० ३। १०४ के अर्थ करते हुये आप ने लिखा है कि जो द्विज मूढ़ होकर दूसरे के घर का अन्न खाते हैं वे उस के पशु बनते हैं। यहां पर अपने हाथ का अथवा अपने घर में भोजन बनाकर खाना मनु जी मानते हैं॥

" राजान्नं तेजमादत्ते ४। २१८ " राजा का अन्न तेज को, शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को नष्ट करता है।

उत्तर—(उपासते ये०) का अर्थ आप ने अक्षरार्थ से विरुद्ध किया है। मूलार्थ तो यह है कि—जो मूढ़ गृहस्थी पराये घर के भोजन अन्न की (उपासते) इच्छा करते रहते हैं वा भोजन के लालच से दूसरों के घर का सहारा तकते रहते हैं वे मर करके उन अन्नदाताओं के पशु बनते हैं॥

इस में अपने हाथ से बनाने खाने का मतलब नहीं। पराया सहारा वा याचना इच्छा न कर केवल अपने पुरुषार्थ ही पर बुद्धिमानों को निर्भर रहना चाहिये॥

फिर आप राजा और शूद्र के अन्न का निषेध करते हैं तो आप क्यों राजाओं से तथा शूद्रों से अन्न, वस्त्र, रुपया ग्रहण करते हैं? यदि करते हैं तो मानलो कि आपका ब्रह्मतेज नष्ट होगया।

वै० व० व्य० पृ० ३६ पं० २२ में—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायैदातुरिह भूयासमयंमेकामः। समृध्यतामुपमादोनमतु

यजु० २६। २

इस मन्त्र के स्वामीजीकृत भाष्य में आप ने निम्न-लिखित शंका की हैं और अपना अर्थ राजा को देवता मान कर किया है॥

१-मन्त्र में यथा पद आने से तथा पद का आना नियमानुकूल है।

२-(जनेभ्यः) इस पद के आने से (भवन्तः कुर्वन्तु) का अध्याहार करना चाहिये।

३-उक्त मन्त्र का देवता ईश्वर माना जावे तो कोई पद ईश्वर-बोधक अवश्य आना चाहिये।

४-मंत्र में (प्रियो भूयासम्) इस पद के आने से ईश्वर जो सर्वप्रिय है किसी को अप्रिय नहीं फिर पूर्वोक्त पद का आना निरर्थक होगा॥

५-ईश्वर के पूर्ण काम होने से (अयं मे कामः समृ-ध्यताम्) यह वाक्य उसमें नहीं घटता है॥

६-(उपमादोनमतु) इस वाक्य के आने से ईश्वर के लिये कोई परोक्षपदार्थ नहीं है।

७-(इह) पद भी एकदेश-बोधक होने से उस के लिये नहीं आ सकता है। इस लिये यह मन्त्र ईश्वर देवता का नहीं॥

८-(वाचं) का अर्थ वाणी है वाणी शरीर से उत्पन्न होती है। वेद ईश्वर का ज्ञान है वाणी नहीं, ज्ञान का सम्बन्ध वाणी के साथ अग्नि आदि ऋषियों ने किया है।

उत्तर——१-यह ठीक है कि यथा पद के साथ तथा पद का सम्बन्ध है और यह स्वामी जी ने भी ग्रहण किया है जैसे (यथाऽहमीश्वरो+आवदानि) (तथा भव-न्तोऽप्यावदन्तु) जैसे मैं ईश्वर उपदेश देता हूं, वैसे आप लोग भी देवें॥

२-(जनेभ्यः) इस पद के साथ जब (आवदानि) का सम्बन्ध है तो (भवन्तः) के साथ भी (वह व्यस्त्रायां चावि) (आवदन्तु) का ही सम्बन्ध हो सकता है यदि (करवाणि) होता तो (कुर्वन्तु) का सम्बन्ध होता अतः आप का लेख अप्रतिपित्सित है ।

३-जब कि सभी ऋषि मुनि देवतानुक्रमणी में उक्त मन्त्र का देवता ईश्वर ही मानते चले आते हैं और उससे अगले मन्त्र का भी देवता ईश्वर ही है तो फिर राजा देवता कहना आप की धृष्टता है । पुनः आदि सृष्टि में विना ईश्वर के आद्युपदेष्टा दूसरा हो नहीं सकता अतः पदसाहचर्य से भी ईश्वर ही का बोध होता है न कि राजा का ।

४-(प्रियो भूयासम्) के आने से ईश्वर पर जो आपने शंका की ईश्वर तो सर्वप्रिय है किसी को अप्रिय नहीं सो यह कहना भी आप का उपेक्षा से है क्योंकि बृहदारण्यक की श्रुति कहती है कि (योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात प्रियꣳरोत्स्यति) जो मनुष्य इस सर्वत्र व्याप्त परमात्मा को छोड़ कर अन्य आत्मा को प्रिय कहे वह अवश्य दुःखसागर में गिर कर रोदन करेगा । अतः जब कि नास्तिकों को ईश्वर प्रिय नहीं है, सहस्रों जैनी बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते हैं तो ईश्वर सर्वप्रिय कह देना यह शङ्का लगा कर ऋषिकृत अर्थ का खण्डन करना आप की प्रामादिक प्रज्ञा का प्रभाव है । अतः ईश्वर उन्हीं को प्यारा लगता है जो ब्रह्मविद्या के स्वाध्यायी हैं इसी वास्ते कहा है कि (यथाहं प्रियोऽस्मि तथा भवन्तोऽपि भवन्तु) ॥

५-ईश्वर के पूर्णकाम होने पर (अयं मे समृध्यताम्) अर्थात् यह मेरी कामना उत्तमता से बढ़े। यह वाक्य उस की पूर्णता का बाधक नहीं किन्तु अपूर्णकाम जीवात्माओं के कल्याण के लिये यह उस की परोपकार रूपी इच्छा है कि मनुष्यजाति के अन्दर विद्वान् लोग उत्तमता से उसकी वेदविद्या को विशाल करें ताकि उस के सब पुत्र सुखी हों। यदि उक्त प्रयोजन नहीं तो बताइये कि पूर्णकाम होने पर ये वाक्य क्यों हैं यथा-(तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति छा० ६। २। ३) (स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति ऐ० १। १। १) (स ईक्षां चक्रे स प्राणमसृजत प्र० ६। ३) तथा (एकोहं बहु स्यामः) अतः इन वाक्यों के आशय को आप अवगत करते तो ऐसी शंका न करते॥

६-(उप-मा-अदः-नमतु) इस वाक्य में उपमालङ्कार से ईश्वर कहता है कि जैसे सुख को वह परोक्षसुख है जो कि जीवात्माओं को शारीरिकेन्द्रिय द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता है अतएव परोक्ष है (तथा भवन्तोऽपि भवन्तु) वैसे ही आप लोग भी उस परोक्ष सुख से संयुत हों॥

७-(इह) पद के ऊपर आप की शंका युक्त नहीं क्योंकि संसार उस के एकपाद में होने से एकदेशी है ही। इसी लिये ईश्वर कहता है कि जैसे मैं इस संसारस्थ अग्नि आदि ऋषियों को उपदेश करता हूं वैसे ही आप भी करें॥

८-वाणी भी ईश्वर की सामर्थ्य से उत्पन्न हुई जैसे पृथिव्यादि लोकों का ईश्वर उत्पादक है वैसे ही वाणी का भी उत्पादक है-जैसे आदि सृष्टि में ईश्वर ने कीट पतङ्ग, पशु, पक्षी, जलचरादि में जिस २ ध्वनि को अपनी शक्ति से उत्पन्न किया वैसी ही वाणी वे सब प्राणी बोलते

चले आते हैं उन में परिवर्त्तन नहीं हुआ परंच मनुष्य ने ईश्वरप्रदत्त शुद्धवाणी को अपभ्रंश करके अपने सुखों को नष्ट कर लिया। अतः मनुष्यदेह में जो तालवादि स्थानों की रचना करके ऋषियों को वेदज्ञान के द्वारा बतलाया कि मन विद्युत् की ताड़ना से नाभिस्थान से प्राणवायु को प्रेरित कर अकारादि अक्षरों की ध्वनियों को मुख के स्थानों में टंकार लगाकर अक्षर, पद, वाक्यों की ध्वनि को दूसरों पर उपदेशार्थ प्रकट करो, वैसाही ऋषियों ने किया इस से चला आया कि जो उस वेदज्ञान को वेदवाणी कहा गया वह वाणी भी ईश्वरकृत है, क्योंकि वह मनुष्य के अन्दर उस की उत्पत्ति के साधन और टंकार न देता तो कोई भी जीव वाणी नहीं बोल सकता। अतःईश्वर का वेदवाणी कहना असंगत नहीं ॥

॥ आवश्यकप्रकरण समाप्त ॥

—*—

अथ ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव

१—इस प्रकरण में आप ब्राह्मणादि चारों वर्णों के गुण कर्म स्वभाव को प्रारम्भ करने के पूर्व वर्ण को जाति मान कर उस को स्वामी जी का मंतव्य बताकर नित्य लिखते हैं सो इस लेखका उत्तर ११ समुल्लास के लेख को उद्धृत करके हमने वहीं लिख दिया है अब बार २ लिखना व्यर्थ है ॥

२—आपने ब्राह्मण के (शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता; ये ९ गुण और पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दानदेना लेना ये छः कर्म और हारीत-स्मृति में कथित १३ प्रकार का शील जिस में विद्यमान हो वह ब्राह्मण है) यह जो लिखा है सो ठीक है ॥

३-परन्तु पृष्ठ ४० पं० ६ में-जो लिखा है कि ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो वा अविद्वान् आहिताग्नि हो वा अनाहिताग्नि देवता ही माना जाता है। यह लेख शास्त्रविरुद्ध है क्योंकि (विद्वांसो हि देवाः अनृतं मनुष्याः) शतपथ अर्थात् विद्वानों ही को देवता कहते हैं अविद्वान् अनृतभाषी मनुष्य जानो ॥

४-पृष्ठ ४१ पं० १६ में अथर्व कांड ५ अ० ४ के ५ मन्त्र दे कर जो लिखा है कि राजा आदि ब्राह्मण का अपमान न करें, यदि करेंगे तो नष्ट हो जावेंगे सो ठीक है, परन्तु उक्त मन्त्रों का अभिप्राय तपस्वी विद्वान् परोपकारी ब्राह्मणों से है न कि मूर्खों से, क्योंकि जिस राज्य में विद्वानों की अप्रतिष्ठा होगी जैसे वह राज्य अवश्य नष्ट होगा वैसे ही वह भी अवश्य नष्ट होगा जहां मूर्खों की प्रतिष्ठा होगी ॥

५-पृष्ठ ४२ पं० १८ से क्षत्रियों के गुण कर्म स्वभाव गीता और मनु से लिखे हैं यह ठीक हैं ॥

६-पृ० ४३ पं० ८ 'ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितम्' विद्वान् ब्राह्मणों ही के होने से क्षत्रिय की वा राज्य की स्थिति है, क्योंकि विद्वान् ब्राह्मण ही के आधीन राज्य व क्षत्रिय स्थिर रह सकते हैं, मूर्खों के आधीन रहने से नष्ट हो जाते हैं ॥

७-पृ० ४४ पं० २१ में लिखा है कि क्षत्रिय को संन्यास लेने का अधिकार नहीं, यह इतिहासविरुद्ध है। जिस कालिदास कृत रघुवंश को आपने प्रामाणिक और कालिदास को पृष्ठ २८ में ब्राह्मण माना है, उसी कविकृत रघुवंश में सूर्यवंशी क्षत्रियों के लिये लिखा है कि "योगेनान्ते तनुत्यजाम्" अर्थात् जो अन्त में योगाभ्यास के

द्वारा शरीर त्यागने वाले थे। फिर आप कैसे कहते हैं कि संन्यास का अधिकार नहीं ? किन्तु क्षत्रिय को दोनों ही विधान हैं कि रण में प्राण त्याग कर सके तो वहां सही और यदि सारी पृथ्वी पर शान्तिमय राज्य की स्थापना करलेवे तो सर्वविजयी होने पर युद्धाभाव से क्या खुदकशी करे ? नहीं, किन्तु योगाभ्यास द्वारा शरीर छोड़े ॥

८-पृ० ४५ में वैश्य के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन गीता और मनु से करते हुये पण्डित जी ने लिखा है कि वैश्य को दो आश्रमों का अधिकार नहीं है, परन्तु उन का नाम नहीं लिखा है। कदाचित ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम को छोड़ कर शेष वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम से ही उनका तात्पर्य होगा। सो यह ठीक नहीं, क्योंकि जब क्षत्रियों को योगाभ्यास और ब्रह्मविद्या का अधिकार है तो वैश्यों को क्यों नहीं ? हां ! यह ठीक है कि संन्यास का अधिकारी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति में ही हो सकता है।

९-पृ० ४६ में शूद्र के गुण, कर्म, स्वभाव लिखे हैं, परन्तु इस प्रकरण में पण्डित जी ने शूद्रों को केवल पाकशास्त्र पढ़ने की आज्ञा दी है सो यह शास्त्रों से विरुद्ध है क्योंकि इस विषय में पूर्व ही बहुत लिखा जाचुका है। पुनः पिष्ट-पेषण करना व्यर्थ है।

इस के अतिरिक्त शूद्र को जो क्रीत लिखा है यह वेदविरुद्ध है, क्योंकि आदमियों को पशुवत् बेचना खरीदना सभ्यता से प्रतिकूल है।

पृ० ५० चारों वर्णों के आपद्धर्म-इसमें कोई समीक्षा योग्य वार्त्ता नहीं है।

पृ० ५१ से पृ० ५३ तक व्रात्य और अन्त्यजों का प्रकरण है। इस प्रकरण में चार स्थानों पर समीक्षा योग्य लेख है॥

१– यह कि–

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्

मनु० अ० १०। श्लोक २०

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्य विगर्हिताः॥

मनु० अ० २। श्लोक ३९

भावार्थ–द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने २ वर्ण की स्त्रियों में वेदोक्त संस्कार रहित जिन पुत्रों को उत्पन्न करते हैं उन (समय पर उपनयन वेदारम्भ रहित) सावित्री के विना परिभ्रष्टों को व्रात्य कहना चाहिये।

इस के उपरान्त अर्थात् १६। २२। २४ के बाद असंस्कृत रहने पर तीनों वर्णों की सन्तान सावित्री से पतित होने पर व्रात्य संज्ञक होजाते हैं और आर्यों से निन्दित होते हैं।

पुनः—

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणः सह॥

मनु० अ० २। श्लोक ४०

भावार्थ–इन अपवित्र व्रात्यों के साथ आपत्तिकाल में भी वेदपठन और विवाहादि योनिसम्बन्धों को ब्राह्मण लोग कभी न करें॥ २। ४०॥

उत्तर—उक्त मनुवचनों से यही पुष्टि होती है कि ब्राह्मणत्व वा द्विजत्व से भी संस्कारों से गिर कर व्रात्य हो जाते हैं। पुनः द्विजलोग उनसे विद्या और विवाहादि सम्बन्ध भी न करें, तो फिर वे जन्म से ब्राह्मण कैसे रह सकते हैं? परन्तु पंडित जी तो विना संस्कार के भी जन्ममात्र से ब्राह्मण मानते हैं।

वै० व० व्य० पृ० ५२ में—

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम्॥

मनु० अ० १०। श्लोक ५८

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेववा।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति॥

मनु० १०। ५९॥

भावार्थ—इस लोक में अनार्यता, निष्ठुरता, क्रूरता, निष्क्रियात्मता जो गुण हैं ये पुरुष को नीचयोनि से उत्पन्न हुआ प्रकट करते हैं:—

क्योंकि नीच स्वभाव वाले सन्तान पिता वा माता अथवा दोनों के स्वभाव को सेवन करते हैं। अतः नीचयोनिज मनुष्य अपनी नीचयोनि को छिपा नहीं सकता है॥

उत्तर—उक्त मनुवचनों से स्पष्ट है कि अनार्यतादि नीचगुणों से नीच स्वभाव का वर्णन है अतः गुण कर्मों के बिना स्वभाव का अस्तित्व कुछ नहीं, वह नीच हों वा उत्तम (स्वस्मिन्भावः) स्वभावः स्व नाम द्रव्य उस में रहने वाली जो गुण कर्म की सत्ता उस को स्वभाव और स्वभाववाला जो द्रव्य उस को स्वभावी कहते हैं॥

वै० व० व्य० पृ ५२ पं० १७ में—

क्षत्र की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुआ क्ष (ख) त्तृ कहाता है (नमः क्षत्तृभ्यः १६ । २६ य०) के इस मन्त्रभाष्य में ऋषि ने माना है और यह जाति पञ्जाब में बहुत है ॥

उत्तर—हम इस बात को ठीक नहीं कह सकते हैं कि क्षत्र का ही बिगड़ कर खत्री हो गया है और नाही ऋषि ने ऐसा लिखा है कि क्षत्र का खत्री हुवा है ॥

वै० व० व्य० पृ० ५२ पं० २१ में—

यह स्थालीपुलाक न्याय से ऋषि दयानन्द का मत वेदभाष्य और पत्रव्यवहार के द्वारा मैंने दिखाया है ॥

उत्तर—प्रिय पण्डित जी! आप की वर्णव्यवस्था समाप्त हुई और हमने भी उस की समालोचना की। आप की वर्णव्यवस्था ऋषि मुनियों व वैदिकसिद्धान्त से विरुद्ध है जिस को कि आप निष्पक्षपातदृष्ट्या विचारेंगे ॥

॥ इति वर्णव्यवस्था समाप्ता ॥

अथ स्वमन्तव्यामन्तव्य ।

इस प्रकरण में कोई विशेष वक्तव्य नहीं केवल ३ मन्तव्यों के अतिरिक्त ॥

१—सत्यार्थप्रकाश और वेद के आधार पर ब्राह्मणादि जातिभेद ईश्वरकृत मानता हूं ॥

२—सत्यार्थप्रकाश के आधार पर द्विजों के लिये आचार्यकुल और शूद्रों के लिये गुरुकुल मानता हूं ॥

३—ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के आधार पर शकुनशास्त्र को सच्चा मानता हूं ॥

उत्तर—१ हम पीछे लिख चुके हैं कि ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय को अध्यारोप से जाति मानना मनुष्यकृत जाति-

त्य है तथा यह भी लिखा जा चुका है कि वेदों में वर्णों को जाति शब्द से कहीं भी नहीं कहा है ॥

२–देखो सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ ९६ में–

गुरु की आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करें ॥

यहां पर महर्षि ने ब्राह्मणादि का गुरुकुल से आना लिखा है । अतः गुरुकुल आचार्यकुल एकार्थक हैं ॥

३–शकुन का शब्दार्थ करते तो ठीक हाल होता कि आप क्या मानते हैं यदि आजकल के शकुनियों की तरह जैसे कि श्यामा पक्षी दाहिना आजावे तो शुभ है और ब्राह्मण सन्मुख आजावे तो अशकुन है ऐसा मानते हैं तब तो आप वेद में सिद्ध नहीं कर सकेंगे । आजकल जो शकुन शास्त्र छपा हुआ मिलता है वह भी गप्पों से भरा हुआ है ॥

॥ इति मन्तव्यामन्तव्यसमीक्षा ॥

—o—

अब आप की पुस्तक की समीक्षा तो समाप्त होगई । आपने अपनी पुस्तक में कहीं २ पुराणों का भी सहारा लिया है; पुनः यहां पर हम भविष्य-पुराण के कतिपय श्लोक उद्धृत करके यह और भी दिखलाते हैं कि गुणकर्मा-नुसार पुराणों से वर्णव्यवस्था सिद्ध होती है सो सुनिये —

भविष्यपुराण–ब्राह्मपर्व

गोवर्गमध्यं च गतो यथाश्वो निर्धार्य्यते चैः सुविचक्षणत्वात् । मनुष्यभावादविशिष्यमाणस्तद्वद् द्विजः शूद्रगणान्न भिन्नः ॥ २० ॥ मनुष्यजातेर्न परो विशेषो यः कल्प्यते सर्वनरानुयायी । संस्कारयुक्ता हि क्रिया विशिष्टा द्विजन्मनां शूद्रविवेकहेतुः ॥२१॥ किं ब्राह्मणा ये सुकृतं त्यजंति किं क्षत्रिया लोकमपालयन्तः ।

स्वधर्महीना हि तथैव वैश्याः शूद्राःस्वमुख्यक्रियया विहीनाः ॥ ३३ ॥ तस्मान्न गोऽश्ववत् कश्चिज्जाति-भेदोऽस्ति देहिनाम्। कार्य्यशक्तिनिमित्तस्तु संकेतः कृत्रिमो भवेत् ॥ ३४ ॥ एवं प्रमाणैः प्रतिषिध्यमानां सांकेतिकीं याति नरो व्यवस्थाम्। स्वकीयसिद्धां स्व-मतैर्निषिद्धां न बुध्यते मूढमना वराकः ॥३५॥ पुनर्भू-वृषलीवेश्याचांडालस्त्रीनिषेविणः । शूद्रान्नरस-पुष्टांगाः प्रेतवस्त्रान्नभोजनाः ॥ ३८ ॥ मृतसूतक-लब्धान्नपानाद्यभ्यवहारिणः । ब्रह्मदेवपितृभूतमनु-ष्येषु बहिष्कृताः ॥ ४० ॥ वेदानध्यापयन्तोऽपि ते ऽधीयानाः श्रुतिक्रमात् । ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः ॥ ४३ ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी॥४५॥इति जातिवर्णने चत्वारिंशोऽध्यायः॥

भा०-गौओं के बीचमें घोड़े के जाने पर चतुर मनुष्य जान लेता है कि ये दोनों पृथक् २ जाति वाले पशु हैं वैसे मनुष्य-समुदाय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भिन्न २ प्रतीत नहीं होते हैं ॥ २० ॥ मनुष्यजाति में कोई भी बुद्धिमान शूद्रादि के विशेष चिन्ह कल्पित नहीं करते किन्तु उप-नयनादि संस्कार और कर्मकांडक्रियाविशिष्टत्व विवेक का हेतु है ॥ २१ ॥ जो वेदोक्त कर्मों को त्याग देते हैं वे ब्राह्मण नहीं, जो प्रजापालन नहीं करते वे क्षत्रिय नहीं, वैसे ही स्वधर्म से हीन वैश्य नहीं और शूद्र भी निज कर्म के बिना नहीं ॥ ३३ ॥ तिस कारण से गौ और अश्व की नाइं कोई जातिभेद मनुष्यों में नहीं,किन्तु समस्त मनुष्यसङ्घ एक जाति हैं कार्यशक्ति के निमित्त से जो सांकेतिक ब्राह्मणादि पद

हैं वे कर्मानुकूल कृत्रिम हैं परन्तु जाति नित्य है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रमाणों से निषेध होने पर ब्राह्मणादि पद जातिवाचक नहीं किन्तु सांकेतिक कृत्रिम हैं। क्योंकि जाति स्वयं सिद्ध और अप्रतिषिद्ध है जिस को कि मूढ़ जन नहीं समझते ॥३५॥ पुनर्भू और वृषली, वेश्या, चांडाली आदि स्त्रियों के भोगने से और शूद्र के अन्नरस से पुष्टांग तथा मृतक के नाम पर वा अरिष्टि में वस्त्र अन्न भोजन के ग्रहण करने वाले ॥ ३९ ॥ और मृतक सूतक के अन्न को लेने वाले भोजन पान करने वाले द्विज ब्राह्मण देव पितरों से निकाल देने के योग्य हैं ॥ ४० ॥ वेदों को अध्यापन कराने अथवा क्रम पूर्वक अध्ययन करने पर भी-दुराचार करने पर ब्राह्मणत्व से पतित हो जाते हैं। मांसभक्षण करने वा बेचने से या लाख वा लवण बेचने से उसी समय पतित हो जाता है और दूध बेचने से तीन दिन में पतित हो जाता है ॥ अध्याय ४० ॥

आचारहीनान्न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः। शिल्पंहि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणंतु ॥ ८ ॥ अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्ते न तिष्ठति । न तेन क्रियते कार्य्यं स्त्रीरत्नेनेव षंढकः ॥४१।८॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा। जातकर्म नामकर्म तथान्नप्राशनं च वै ॥८॥ चूडोपनयनं चास्य व्रतादेशस्तथैव च । समावर्त्तनमप्यन्यत्पाणिग्रहणमेव च ॥ ९ ॥ इत्येवमादिसंस्कारविधानैर्येतिसंस्कृताः । त एव ब्राह्मणा येषां नैरन्तर्य्येण कामनाः ॥ १० ॥ संस्कृतोपि दुराचारो नरकं याति मानवः । निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः

सदा ॥ १९ ॥ आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनि-
सत्तमाः । गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फु-
टम् ॥ २० ॥ विमोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनम-
स्कृताः । बहवः कथ्यमाना ये कतिचिन्तान्निबो-
धत ॥ २१ ॥ जातो व्यासस्तु कैवर्त्यां श्वपाक्याश्च
पराशरः । शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतो
ऽभवत् ॥ २२ ॥ मृगीजोयर्षिशृङ्गोऽपि वशिष्ठोगणिका-
त्मजः । मंदपालोमुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते ४२।२३

भाषार्थ– छः अङ्गों के सहित वेदाध्ययन करने पर भी वेद, आचारहीन मनुष्य को पवित्र नहीं करते, क्योंकि वेदों का पठनमात्र तो शिल्पवत् है, किन्तु वेदोक्त कर्मों का आचरण में ढालना ही ब्राह्मणत्व का लक्षण है ॥ ८ ॥ चारों वेदों को पढ़ कर भी यदि सदाचार में स्थित नहीं होता है तो वह ऐसा है जैसे नपुंसक मनुष्य रत्नों को धारण करके स्त्री को प्रसन्न करना चाहता है ॥ ९ ॥ गर्भा-धान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, अन्नप्रा-शन, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, ब्रह्मचर्य के आचरण, पाणिग्रहण इत्यादि संस्कारों को विधिपूर्वक करते हुये जो आत्मा को संस्कृत(पवित्र) करते हैं और नैरन्तर्य से वेदोक्त काम्यकर्मों में जिन की कामना रहती वे ही ब्राह्मण कहलाने के योग्य होते हैं ॥ १० ॥ संस्कृत हुआ भी मनुष्य दुराचार से नरकगामी होता है और असंस्कृत होने पर भी सदाचार से विद्वानों में सदा उत्तम कहा जाता है। सदाचार का अनुष्ठान करने पर मुनिसत्तम व्यासादि गर्भा-धानादि संस्कारों से रहित उत्पन्न होने पर भी विद्वानों में उत्तम शोभा को प्राप्त हुये और सब लोकों में पूजे गये

॥ २१ ॥ बहुत से ऐसे मुनि कहे गये हैं उन में से कुछ का वर्णन सुनो—महर्षि व्यास जी धीवरी से उत्पन्न हुये, श्वपाकी अर्थात् चाण्डाली से पराशर मुनि हुये, शुकी नाम शूद्रा से शुकदेव विज्ञानी हुये, उलूकी नाम शूद्रा से कणाद ऋषि हुये, मृगी नामक जांगलिक शूद्रा से ऋषिश्रृंग का जन्म हुआ और गणिका से तेजस्वी वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई और मन्दपाल मुनि मल्लाहिनी से पैदा हुये ॥

अतः जहां २ सदाचार की प्रतिष्ठा होती है वहां २ पर ही मनुष्यों के आत्मा पवित्र और तेजस्वी होते हैं और जिन बड़े २ द्विजकुलों में भी दुराचार ने वास किया वे सदैव पतित हुए हैं और होंगे ॥

—— ? ——

पण्डित जी की सेवा में अन्तिम निवेदन ॥

महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव में आप और प्रतिनिधिसभा के प्रधान आदि महाशयों के मध्य में जो विचार स्थिर हुआ है उस के सुनने से यह निश्चय ज्ञात हुआ है कि आपने अपनी स्वकृत वर्णव्यवस्था को वैदिक-सिद्धान्त से विरोधयुक्त स्वीकार कर लिया और उक्त सभा ने आप के नाम दिये हुये नोटिस को वापिस लेना भी स्वीकार कर लिया है । तब यह हमने जो आपकी पुस्तक की समीक्षा की है, कदाचित् इस को आप वा अन्य कोई सज्जन व्यर्थ बताने लगें तो यह उन का कहना ठीक नहीं होगा, क्योंकि आपकी पुस्तक अनुमान ८०० के विक्रय होकर फैलचुकी हैं यदि उस पुस्तक के पाठकों के अन्तःकरण में जो शंका उत्पन्न होंगी और जो विष फैला है उस का कौन निवारण करेगा? अतः यह वास्तविक वैदिकवर्णव्यवस्था

उन निखिलदोषों का निवारण कर वेदोंके महत्व को स्थापित करेगी। इस कारण से हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं और आप को यह लाभ हुआ कि लोगों के दिलों में जो धर्म की ओर से शंका होगई हैं उन के हटाने के लिये आपको दुबारा परिश्रम न करना पड़ेगा। इस के अतिरिक्त आप ने परीक्षार्थ जो स्वल्पकाल के लिये पौराणिकत्व को ग्रहण किया था इस से पौराणिकपक्ष की पराजय करा कर आप पृथक् होगये। अब पौराणिक अपना शिर धुनेंगे, क्योंकि पौराणिकों के जन्माभिमान की मिट्टी खेत कर और भूत प्रेतों की लालसा देकर उनके हर्ष को शोक में परिणत कर दिया। अतः हमारी बनाई हुई वास्त० वैदिकवर्णव्यवस्था में जो भी आक्षेपरूप शब्द आप के विषय में लिखे गये हैं वे सब आक्षेप जन्माभिमानी पौराणिकों पर ही समझने चाहियें जैसे जब किसी अभियोग में अभियुक्त (मुद्दाइले) और अभियोक्ता (मुद्दई) की तरफ से जो प्राड्विवाक् (वकील) नियत होते हैं तो जो परास्त होता है उस से मुद्दई वा मुद्दाइलह की शिकस्त समझी जाती है न कि वकीलों की। इस दृष्टान्त से दार्ष्टान्त में वे सब आक्षेप पौराणिकों पर आरोप होगये। आप ने उन की वकालत की थी, परन्तु वैदिक कानून के सम्मुख पौराणिक अभियोक्ता ने शिकस्त खाई, आप का इस में कोई अपराध नहीं। इसी प्रकार मैं आर्यों का वकील था सो इसमें मेरी की हुई वकालत से आर्यों की विजय हुई, मेरी नहीं। परन्तु मैं और आप दोनों आर्य थे। अतः आर्यत्व सम्बन्ध से उस विजय में हमारा और आप का भी हिस्सा है। और लाभ बड़ा भारी यह हुआ कि इस पुस्तक से मूल

वेदमन्त्रों के प्रमाणों से शूद्र और बढ़ई आदिकों को हवन करना, सदाचार और विद्या से मनुष्यमात्र को उच्चाधिकार मिलना, और वर्णों का पर्यायी जाति शब्द का न होना, और गुण कर्मों के बिना ग्रहण किये स्वभाव का लक्षण न हो सकना आदि अनेक बातें जानी गईं ।

अब अन्य सज्जनपुरुषों की सेवामें निवेदन है कि जहां कहीं इस पुस्तक में वर्ण, मात्रा तथा वाक्यों की अशुद्धि और जो महर्षि दयानन्द जी कृत वेदभाष्य तथा सायण-भाष्य के आधार पर जो मन्त्रार्थ किये गये हैं उन में जहां कहीं अर्थाशुद्धि होगई हो उस को अनुभव करके सूचना देने पर दुबारा छापने में शुद्ध कर दी जावेगी ॥

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
ओं नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषं ऋतमवादिषं सत्यमवादिषं तन्मामावीत्तद्वक्तारमावीत् आवीन्माम् आवीद्वक्तारम् ॥

॥ ओं शान्तिः ३ ॥

इत्यार्योपदेशकपण्डितवरभूमित्रशर्म्मणः कृतौ वास्तविकायां वैदिकवर्णव्यवस्थाया-मुत्तरार्धं खण्डम् ॥

(रक्तशोधक) बलामृतशर्बत

४० वर्ष का आज़माया हुआ एक महात्मा का बताया हुआ अ[illegible]क से या और अनेक कारणों से कैसा ही नया या पुराना खून बिगड़ा हुआ हो जो कि किसी दवाई से आराम न होता हो, जो रोगी निराश हो गये हों उन को मैं सच्चाई के डङ्के की चोट से कहता हूं कि वह निःशङ्क आज़मा लें। वृक्ष के पत्ते तोड़ने से पेड़ का नाश नहीं होता, उस को मूल जड़ से उखेड़ना चाहिये। श्री धन्वन्तरि महर्षि कहते हैं कि अशुद्ध रक्त से ही सब रोग पैदा होते हैं। रक्त की शुद्धता से दीर्घ जीवन अरोगता प्राप्त होती है और कोई रोग पास नहीं आता, इस वास्ते खून को साफ़ रखना अत्यन्त आवश्यक है। खून साफ़ करने के वास्ते बलामृतशर्बत से बढ़ कर कोई औषधि नहीं है। इस को हर एक ऋतु में बूढ़ा जवान बच्चे नरनारी सब पी सकते हैं। यह खून को साफ़ करता है तथा बल को बढ़ाता है। काले दाग़ लाल चकत्ते चेहरे की बदसूरती घाव बेचैनी जोड़ों का दर्द आंखों में गरमी या लाली खुजली फोड़े बदहज़मी कब्ज़ को दूर करता है। क़ीमत ३२ खुराक १६ दिन के वास्ते १।)रु० डा० खर्च जुदा होगा॥

पता—मैनेजर (एस. बी. के)

सेवक औषधालय लाहौर